Chapters-1

अध्याय- प्रथम

जीवन परिचय तथा युगीन परिस्थितियाँ

जीवन और व्यक्तित्व : एक संक्षिप्त रूपरेखा

युगीन परिस्थितियाँ :- राजनीतिक एवं राष्ट्रीय,
सामाजिक,
सांस्कृतिक,
साहित्यिक.

जीवन और व्यक्तित्व

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के विषय में किसी प्रकार की जीवनी अथवा स्वयं उनकी आत्मकथा आदि उपलब्ध नहीं होती है. एक स्थान पर उन्होंने भी स्वयं इसे नकारा है और यह कहा है कि यदि उन्होंने डायरी रखी होती तो बहुसंख्यक घटनाएँ विविध प्रसंगों में प्रस्तुत की जा सकती थीं. अतएव उनके विषय में जो विवरण उपलब्ध होता है, उसीके आधार पर हम उनके जीवन और व्यक्तित्व की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं.

मैथिलीशरण गुप्त के पूर्वज " पद्मावती " से भांडेर आये और भांडेर से श्री राघव कनकने वहाँ के राजवंशी के बुलाये जाने पर चिरगाँव में आकर गुप्त परिवार सामंती वातावरण में रहने लगा. इस परिवार को अनेक सुविधाएँ भी दी गई. यह परिवार गहोई वैश्यों का है. गुप्तजी का वंश " कनकने " नाम से प्रसिद्ध है.

राघव कनकने के पुत्र श्री लल्लाजू थे. उनके पुत्र ललनजू और ललनजू के पुत्र श्री रामचरणजी थे. श्री रामचरणजी को दाऊजू कहते थे. उनके घनश्यामदास जी और भगवानदासजी नामक दो भाई थे. श्री रामचरणजी के पाँच पुत्र हुए- श्री महारामदासजी, श्री रामकिशोरजी, श्री मैथिलीशरणजी, श्री सियारामशरणजी और श्री चारुशीलाशरजी.

श्री रामचरणजी के बारे में मुंशी अजमेरी ने लिखा है - " सेठ रामचरन कनकने हमारे यहाँ के बहुत बड़े आदमी थे. जैसा बड़ा उनके मकान का फाटक, वैसा ही बड़ा उनका मकान और घी का गोदाम था. उनके यहाँ रथ, सेजगाड़ी (बड़ी मझोली) और कई प्रकार की बग्घियाँ थीं, बैल, घोड़े, ऊँट, हथियार और सिपाही थे और थे बहुत से नौकर-चाकर. " [1]

---

1. दैनिक " प्रताप ", 22 जुलाई, 1936, में मुंशी अजमेरीजी का लेख " मेरा और गुप्तजी का संबंध- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ-

सेठजी अपनी जाति के एक प्रसिद्ध और संपन्न सेठ थे. चिरगाँव और चिरगाँव के आसपास कोई तेरह गाँवों में उनकी जमींदारी थी. वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर थे. उन दिनों डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मेम्बरी बड़ी प्रतिष्ठा की वस्तु थी. " ओरछा और दतिया के महाराजाओं से उनका बड़ा मेल था. वे बड़े उदार और रईसी मिजाज के आदमी थे. " [1]

ऐसे साधन संपन्न पिता के यहाँ 3 अगस्त सन् 1886 को चिरगाँव में मैथिलीशरणजी का जन्म हुआ.

उनका नाम " कनकने मिथिलाधिपनंदिनीशरण " रखा गया था. इतना बड़ा नाम स्कूल के रजिस्टर में आसानी से लिखा नहीं जा सकता था. अतएव उनके अध्यापक ने उनका नाम " श्री मैथिलीशरण " कर दिया और वे इसी नाम से साहित्य- जगत में प्रसिद्ध हुए. कवि के पिता मध्य-वित्त गृहस्थ होते हुए भी प्रकृति से उदार और राजसी थे. वे अपना अधिकांश समय ईश्वर भजन और पूजा पाठ में व्यतीत करते थे.

उनकी माता का स्वभाव सरल एवं विनम्र था. वे घर में बड़ी थी फिरभी बहुओं से दबीदबी रहती थी. वे सबको अच्छा खिलाती थी लेकिन

÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷ ÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷

इकहत्तर वर्षों की अभिनंदनीय गाथा- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक " बरुआ " पृ. 142 से उद्धृत.

1. दैनिक " प्रताप " 22 जुलाई 1936 में मुंशी अजमेरीजी का लेख " मेरा और गुप्तजी का संबंध "- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन ग्रंथ इकहत्तर वर्षों की अभिनंदनीय गाथा- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक " बरुआ " पृ. 142 से उद्धृत.

स्वयं साधारण भोजन करती थी. दूसरों को खिलापिलाकर वे प्रसन्न होती थी. यही बात घर के सेवकों के विषय में भी थी. जब उनके छोटे काका रात को ग्यारह बजे दुकान से लौटते थे तब वे जाड़े की रातों में भी एक बरोसी लेकर बैठी रहती थी. उनके वात्सल्य में एक संकोच अथवा संयम के दर्शन होते थे.

मैथिलीशरण जी गाँव की ही एक पाठशाला में पढ़ने लगे. उस समय प्रारंभिक पाठशालाओं में दो समय पढाया जाता था और तीसरी बार वे पंडितजी से पढते थे.

वे प्राइमरी की पढाई के बाद झाँसी की हाइस्कूल में पढने लगे. वहाँ उनको पहले वर्ष डबल प्रमोशन मिला. लेकिन इसको वे आरंभ-शूरता ही मानते हैं. वे दिन में गेंद-बल्ला, डोर - पतंग खेलते थे और रात में नाटक- चेटक देखते थे. कुछ दिन बाद उनको झांसी से घर बुला लिया गया.

उनके पिता उनको अंग्रेजी पढाना चाहते थे. किंतु वे झाँसी की शिक्षा को विलासी और वैभवपूर्ण भी मानते थे. अतएव उन्होंने मैथिलीशरण में वैष्णव संस्कारों का सिंचन करना ही उचित समझा. इसी समय मुंशी अजमेरी के और गुप्तजी के पिता मिले. मुंशीजी के पिता भीकाजी संगीत और काव्य दोनों में कुशल थे. वे रायबहादूर साहब के आश्रित थे. लेकिन सन 1892 में रायबहादूर साहब की मृत्यु हो गई. तबसे भीकाजी गुप्त जी के पिता की ओर अत्यधिक आकर्षित हुए. बादमें, उन्होंने " रहस्य रामायण " का भी अध्ययन किया. वे सिर्फ कहानियाँ ही नहीं, लेकिन कवित्त और सवैये भी सुनने लगे और संस्कृत के श्लोकों को भी पढने और कंठस्थ करने लगे. इसके बाद मुंशीजी के आग्रह के कारण खाकी रंग का साफा छोड़ दिया और पगड़ी बाँधने लगे. जब वे दो महिने के लिए देशाटन गए, तब गुप्त जी ने " रसराज सुंदर ", " चौक पंचाशिका " आदि पुस्तकों को मँगवाकर उनके श्लोक कंठस्थ कर लिये. " श्री वेंकटेश्वर समाचार ", " हिन्दी बंगवासी " और " भारत मित्र " जैसे साप्ताहिक पत्र भी पढे. उन्होंने अखबारों के अतिरिक्त " चन्द्रकान्ता"

और " चन्द्रकान्ता सन्तति " जैसे अनूदित उपन्यास भी. " भर्तृहरिशतक ", " हितोपदेश ", " कामंदकीयनीति " और " चाणक्यनीति " आदि ग्रंथों का अध्ययन भी किया.

वे अंग्रेजी समाचार भी पढते थे. और उर्दू का भी अध्ययन करते थे. गुप्तजी ने वैद्यक सीखने के लिए " माधव-निदान " का अधिकांश कंठस्थ किया और " मंत्रशास्त्र " का भी अध्ययन किया. उन्होंने " वैद्यमहिमा " नामक एक आख्यान की भी रचना की. आयुर्वेद में उनकी रुचि नहीं थी.

महाराष्ट्र के एक विद्यार्थी से कवि ने ऋग्वेद का अभ्यास किया. बादमें, उन्होंने अमरकांड के दो कांड याद किए. जब वे " सिद्धान्त कौमुदी " का अध्ययन कर रहे थे तभी उनके पिता की मृत्यु हुई जिससे वे नियमित अध्ययन कार्य कर नहीं पाये.

कवि ने श्री दुर्गादत्त पंतजी से " बृहत्त्रयी " और लघुत्रयी " के अनेक प्रसंग और काशीप्रवासी पं. अयोध्यानाथजी के स्वरचित अनेक संस्कृत श्लोक सुने. इसी समय सन 1901 में कवि को प्रथम काव्य स्फुरणा हुई.

पिताजी की मृत्यु के बाद कवि का अध्ययन कार्य समाप्त हो गया. और स्वाध्याय का कार्य शुरु हुआ. उन्होंने इतिहास, पुराण, संस्कृति-विषयक ग्रंथ, संस्कृत के अनेक काव्यों और नाटकों को तथा भास और कालिदास जैसे संस्कृत के कवियों को, तथा तुलसी, सूर, नन्ददास, रहीम, बिहारी, घनानंद, सेनापति, मतिराम, देव, पद्माकर, ठाकुर आदि अनेक प्राचीन कवियों का अध्ययन किया. वे " छत्रप्रकाश " के रचयिता लाल कवि को भूषण की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ मानते थे.

बंगला भाषा कवि ने प्राय: स्वयं ही सीखी. घर में उनके पिता की बंगला का अक्षरज्ञान करानेवाली पुस्तकों, बंगला का कोष तथा कतिपय अन्य

पुस्तकें थीं, जिन्हें स्वयं पढ़ते- पढ़ाते तथा किन्हीं बंगाली अधिकारी के संसर्ग- सहयोग से गुप्तजी ने यह भाषा सीखी. उन्होंने बंगाल के माइकेल मधुसूदन दत्त, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, नवीनचन्द्र सेन, बंकिमचन्द्र तथा शरतचन्द्र आदि के ग्रंथों का पारायण किया. गुप्त जी उनसे प्रभावित भी हुए हैं.

मुंशी अजमेरी के संपर्क में आने पर कवि ने सितार बजाना सन 1897-98 में सीखा. लेकिन उनको संगीत- शिक्षा मिल नहीं पाई. उन्होंने अपने गले के कारण गाना सीखने का उद्योग छोड़ दिया और बादमें सितार भी छोड़ दिया. वे अजमेरी जी को " कोकिल कंठ " और स्वयं को " काग- काकली " मानते थे.

जब वे स्कूल में पढ़ते थे तब एकबार इंसपेक्टर संस्कृत के विषय में प्रश्न करने वाले थे. इसीलिए उनके शिक्षक " शिवतांडव स्तोत्र " सुनाने लगे जिससे विद्यार्थी उसके प्रश्न के बारे में सोचने लगे, इस विषय में महादेवी जी ने लिखा है कि - " साधारणतः परीक्षा के हथौड़े के नीचे प्रतिमा गढी नहीं जाती, उल्टे उसके चूर होने की संभावना रहती है. गुप्त जी इस हथौड़े के नीचे से यदि निकल न भागे होते तो हिन्दी को तिलक कंठी धारी राष्ट्रकवि न प्राप्त होता. "[1] हम कह सकते हैं कि उन्होंने जीवन की पुस्तक को ही पढ़ा है और जीवन की परीक्षा में ही सफल होने की जीवन भर चेष्टा की है.

उनका प्रथम विवाह सन 1895 में, दतिया में 9 वर्ष की उम्र में हुआ था. अजमेरी जी पिताजी के साथ उनकी बारात में गए थे. बरात बहुत बड़ी थी. उसके बाद अजमेरीजी ने उतनी बड़ी बारात कभी नहीं देखी. " बारात दतिया गई थी और किले के पास ठहरी थी. पूरी बरात

÷:÷:÷:÷:÷:÷:÷:÷:÷ :÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷÷

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ, " रेखाएँ " - श्रीमती महादेवी वर्मा- पृ. 93

वहाँ नहीं समा सकी थी, इसलिए बहुत से बाराती इधर-उधर भी ठहर गए थे. मैथिलीशरण जी के ससुर स्वर्गीय रामनाथ जी सोनी भी दतिया के बहुत बड़े सेठ थे. चार-चार आदमियों की ज्योनार होती थी. कनकने जी ने आतिशबाजी इतनी बनवाई थी कि वह टीके के समय खत्म नहीं हुई, इसलिए कई दिन चलती रही. ऐसी धूमधाम से मैथिलीशरण जी का विवाह हुआ था. सेठजी जो कार्य करते, बहुत ही आडंबरपूर्ण करते थे. उनका स्वभाव ही ऐसा था." 1

सन 1903 में उनकी प्रथम पत्नी का देहांत हो गया. दो महिने बाद उनके पिता की भी मृत्यु हो गई. सन 1904 में उनका दूसरा विवाह गौना में हुआ. इस विवाह में मुंशीजी भी उनके साथ थे. इस विवाह से उनको एक पुत्र और एक पुत्री प्राप्त हुई लेकिन बाल्यावस्था में ही दोनों की मृत्यु हो गई. दूसरी पत्नी की मृत्यु के बाद उनकी इच्छा विवाह करने की नहीं थी किंतु कवि छोटे काका तथा मुंशीजी का अनुरोध टाल न सका और सन 1914 में तीसरा विवाह श्रीमती सरयूदेवी के साथ संपन्न हुआ. इस विवाह से उनको नौ संतानें हुई लेकिन सिर्फ एक ही संतान जीवित रही. सन 1936 में उर्मिला--चरण का जन्म हुआ. सन 1955 में गुप्तजी के घर पर पुत्रवधू का आगमन हुआ.

गुप्त परिवार ने संयुक्त गृहस्थ- जीवन को महत्व दिया है. पारिवारिक प्रतिष्ठा और गौरव के निर्वाह का कार्य उनके अग्रज करते थे. कवि गृहस्थी और व्यवसाय को नवीन उपकरणों से विकसित और सज्जित करता था. अनुज सियारामशरणजी तत्व-चिंतक और कवि थे. चारुशीलाशरण जी मास्टर थे और वे सियारामशरण जी की सेवा करते थे. बालकों का चरित्र- निर्माण और

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ- इकहत्तर वर्षों की अभिनन्दनीय गाथा- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक "बरुआ", पृ. 150

7

बहू-बेटियों के ज्ञान-वर्द्धन का निर्वाह भी वे ही करते थे. प्रकाशन के संचालक का कार्य श्री निवासजी करते थे और प्रेस की व्यवस्था सुमित्रानंदन जी करते थे. मुंशी अजमेरी, महादेवीजी, रामकृष्णदासजी, स्व. गणेशजी, जैनेन्द्रकुमार जी आदि से उनका स्वजनों सा ही संबंध था.

परिजनों में पारिवारिक प्रेम, श्रद्धा और वात्सल्य के दर्शन होते थे. इस परिवार पर केवल मध्ययुगीन प्रभाव ही नहीं पड़ा था लेकिन आधुनिक प्रभाव भी लक्षित होता था. वे संयुक्त परिवार में रहते थे फिरभी इसका प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र था. " घर और प्रेस, जमीन और सम्पत्ति, प्रकाशन और पवनचक्की सबका बँटवारा सन 43 में हो गया है. सबका चल- अचल सम्पत्ति में अपना- अपना भाग है. कानून की दृष्टि से आज गुप्त परिवार एक कंपनी के साझीदारों का समुदाय हैं, बड़ी बखरी है, रहन- सहन, खान-पान सब एक है, व्यवसाय भी संयुक्त है, पर यदि कोई भी हिस्सा- बांट चाहे तो घंटे भर में पृथक हो सकता है. "[1] अर्थात यह परिवार आर्थिक दृष्टि से पृथक हो सकता था लेकिन सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से अपृथक था. वे कभी भी अपने परिजनों से अलग नहीं हो सके थे.

ग्रामीण कृषि- सभ्यता के संस्कार और रामोपसना का प्रभाव भी इस परिवार पर रहा था. गुप्त जी धोती पहनते थे जबकि उर्मिलाचरण कोट पटलून. सुमित्रानंदन जी की पत्नी पर्दा नहीं करती है जबकि अन्य स्त्रियाँ पर्दा करती है. अर्थात यह परिवार प्राचीनयुग से प्रभावित हुआ है फिरभी आधुनिकता से वंचित नहीं रह पाया है.

---

1. कवि से वार्तालाप- मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक- पृ. 8 से उद्धृत.

गुप्त परिवार का प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक काम करता है. वे " अतिथि-देवोभव " मानते हैं और उनकी सेवा में ही तल्लीन रहते हैं. " घर के भीतर के सभी काम-काज, चौका-वर्तन से पाक बनाने तक, महिलाएँ ही करती हैं. भोजन भी वे ही परोसती हैं. ठाकुर पूजा कोई ब्राहमण करता है और जगना सेवक चाय बनाना, जल भरना, कपड़े छींटना, बाज़ार का छोटा-मोटा काम कर देना, इत्यादि. " [1]

" गुप्तजी का परिवार अपने प्राचीन स्वरुप को सुदृढ़ आधार दिए हुए है. वहाँ नवीनता का प्रवेश हुआ है पर उतना ही जितना उपयोगी है. नए मुद्रण यंत्र वहाँ हैं, पर बैठक और चौकी जमीन पर ही है. घर में कार और फ्लश टट्टियाँ है. पर मकान का स्वरुप ग्रामीण है. " [2]

कहा जा सकता है कि गुप्त परिवार नवीन और प्राचीन जीवन प्रणाली का संगम ही है. वे लोग चिरगाँव में भी झाँसी के बंगले के ठाठ से ही रहते हैं.

कवि के जीवन में उनके अनुज सियारामशरणजी का महत्व कम नहीं है. गुप्तजी ने अपने अनुज के संबंध में उल्लेख करते हुए " साकेत " में कहा है कि--

---

1. चिरगाँव प्रवास में ज्ञात - मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - कमलाकांत पाठक- पृ. 9 से उद्धत.
2. गुप्तजी का आतिथ्य पाकर अनुभूत मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - कमलाकांत पाठक - पृ. 9 से उद्धत

9

" अनुज मुझसे न तुम न्यारे कभी हो
सुहृद, सहचर, सचिव, सेवक सभी हो. "

श्रीमती सरयूदेवी ने अपने पति के परिवार को ही सबकुछ माना है. गुप्तजी ने " द्वापर " रचना का समर्पण पत्नी को किया है--

" कर्म- विपाक कंस की मारी, दीन देवकी सी चिरकाल,
लो, अबोध अन्तःपुरि मेरी, अमर यही माई का लाल. "

रामचरणजी मुंशी अजमेरी को छठा पुत्र मानते थे और गांधीजी उनको कवि का शिष्य मानते थे. मुंशीजी मुस्लिम हैं फिरभी उनकी हिन्दू धर्म में अडिग श्रद्धा थी. वे मंदिर में जाते थे और कीर्तन भी करते थे. मुंशीजी और गुप्तजी धार्मिक क्षेत्र में उदार रहे हैं.

कवि को रामभक्ति के संस्कार अपने पिता से ही मिले हैं. कवि को पवित्रता की भावना सिखानेवाले भी उनके पिता ही है.

अपनी माँ काशीबाई के संबंध में वे लिखते हैं ---

" भूले तेरे व्रत विविध, अब भी याद प्रसाद,
होकर तू गृहस्वामिनी रही सेविका तुल्य तथा
रामचरित को छोड़ कुछ पढ़ा न तूने और . " [1]

कौशल्या और कुन्ती की अवतारणा करते हुए कवि को अपनी माता की ममता का स्मरण रहा है.

कवि को व्यावसायिक सूझ- बूझ अपने छोटे काका भगवानदास जी से मिली है. पिता की मृत्यु के पश्चात अठारह वर्षों तक कवि को छोटे काका ने ही प्रभावित किया. अर्थात कवि को गृहस्थी और व्यवसाय की जानकारी

1. प्रदक्षिणा - काव्य का समर्पण.

भगवानदासजी से ही मिली है. कवि के मँझले काका की मृत्यु उनके पिता के जीवनकाल में ही हो गई थी.

भगवानदास जी के व्यवसाय का ही वह घाटा था, जिसके कारण कवि के कुटुम्ब को " कोई तीस चालीस वर्ष तक उस संकट से जूझना पड़ा. "[1] इस विपन्न आर्थिक स्थिति से ही कवि को सादगी और सरलता का पाठ मिला है.

व्यक्तित्व निर्माण में बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्ष एक दूसरे के पूरक रहते हैं. उनको पृथक नहीं किया जा सकता. मनुष्य के जीवन के लिए जितना आंतरिक पक्ष महत्वपूर्ण है उतना ही बाह्यपक्ष भी. व्यक्ति के स्वभाव, प्रकृति और व्यवहार के साथ साथ उनकी आकृति, वेश- भूषा, खानपान, रहन-सहन से परिचित होना भी आवश्यक है.

रायकृष्णदास जी ने गुप्तजी के व्यक्तित्व का जिस रुप में उद्घाटन किया है उसीको जैनेन्द्रकुमार जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है --
" नाम बड़े, दर्शन थोड़े, उनकी पहली छाप मुझ पर यह पड़ी. ----- मालूम हुआ कि दर्शन को थोड़ा रखकर ही उन्होंने अपना नाम बड़ा कर पाया है. अपने चारों ओर दर्शनीयता उन्होंने नहीं बटोरी. रुप उन्होंने आकर्षक नहीं पाया. इतने से ही मानो मैथिलीशरण संतुष्ट नहीं हैं. अपनी ओर से भी वह किसी तरह उसे आकर्षक न बनने दें, मानो इसका भी उन्हें ध्यान रहता है. लिबास मोटा, देहाती और कुढ़गा.--- मानों घोषित करना चाहते हो कि मैं सम्भ्रम के योग्य प्राणी नहीं हूँ. उत्सुकता का या शोभा का या समादर

---

1. भारत-भारती के विषय में कवि की रेडियो वार्ता, सन 53
मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक- पृ. 15 से उद्धृत

का पात्र कोई और होगा. मैं साधारण में साधारण हूँ. ---- जो है, सो है. न अधिक मानते हैं, न दीखते हैं. कम माना जाना भी उन्हें पसंद नहीं है. इज्जत में व्यतिरेक नहीं आ सकता. " [1]

महादेवी वर्मा ने गुप्तजी के व्यक्तित्व का बिम्ब विधान करते हुए लिखा है-

" गुप्तजी के बाह्य दर्शन में ऐसा कुछ नहीं है, जो उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके. साधारण मझोला कद, साधारण छरहरा गठन, साधारण गहरा गेहुँआ या हल्का साँवला रंग, साधारण पगड़ी, अंगरखा, धोती या उसका आधुनिक संस्करण गांधी- टोपी, कुरता, धोती और इस व्यापक भारतीयता से सीमित सांप्रदायिकता का गठबन्धन सा करती हुई तुलसी कंठी. अपने रुप और वेश दोनों में इतने अधिक राष्ट्रीय है कि भीड़ में मिल जाने पर शीघ्र ही खोज नहीं निकाले जा सकते. उनके चौडे ललाट पर क्रोध और दुश्चिन्ताओं की क्रूर लिखावट नहीं है, सीधी भ्रुकुटियों में असहिष्णुता का कुंचन नहीं है. ऊँची नाक पर दम्भ का उतार- चढाव नहीं है और ओठों में निष्ठुरता की वक्रता नहीं है. जो विशेषताएँ उन्हें सबसे भिन्न कर देती हैं, वे हैं उनकी बँधी दृष्टि और मुक्त हँसी. " [2]

उन्होंने सादगी, सरलता को ही अपने जीवन में महत्व दिया है. उनका व्यक्तित्व प्रतिभाशाली है. अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के कारण वे किसी भी अजनबी से अपनापन स्थापित कर सकते हैं. उनकी शालीनता और आत्मविश्वास इतना गहरा है कि किसी के भी आगे झुककर छोटा नहीं

1. " ये और वे " - जैनेन्द्रकुमार- पृ. 77
2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ " रेखाएँ " - श्रीमती महादेवी वर्मा- पृ. 91

होता, किंतु मौलिक या सैद्धान्तिक प्रश्नों पर कभी तनिक- सा भी नहीं काँपता, जो एक ओर परंपरावादी कवि प्रसिद्ध है. लेकिन दूसरी ओर चालीस वर्षों से निरंतर अपने उदार दृष्टिकोण के कारण प्रगति- प्रेरक रहा है और विरोधियों को प्रभावित करता रहा है." [1]

वे अपने प्रतिभाशाली सामाजिक व्यक्तित्व के कारण सब तरह के, सब श्रेणियों और सभी वर्गों के लोगों से अपनत्व स्थापित कर सकते थे. वे अनपढ ग्रामीणों के संपर्क में भी आते थे. उस समय भी वे मानवीय समानता को ही महत्व देते थे. वे धन या पद किसी के भी सामने झुकनेवाले नहीं थे. वे तो धनी या अमीर, प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित सभी को एक ही दृष्टि से देखनेवाले व्यक्ति थे.

वे प्रातःकाल घर के आँगन में टहलते थे. इसके बाद वे जलपान करते थे और अपने भाई-भतीजों से बातचीत करते थे. तथा डाक की प्रतीक्षा करते थे. तत्पश्चात वे काव्य रचना करते थे. वे काव्य रचना करते थे या चर्चा लेकर आनेवालों से बातचीत करते थे. वे ठाकुर जी को भोग लग जाने के बाद ही स्नान करते थे. भोजन करते समय भी वे दूसरों की तृप्ति का ध्यान रखते थे. तदनंतर संध्यातक चौसर का खेल, पुस्तकावलोकन, वार्तालाप, घर-बाहर के संबंध में परामर्श, नई योजनाओं पर विचार आदि चलता रहता था. जहाँ उत्तर भेजना हो, वहाँ पत्र लिख दिए जाते थे. इसी बीच तीसरे पहर की चाय होती थी. घर का कोई न कोई व्यक्ति जाता- आता रहता था. उनसे परामर्श तथा वृत्तांत कथन हुआ करता था. इसी भाँति बाहर से ही

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ- मैथिलीशरणजी के व्यक्तित्व की द्वैतता- श्री रायकृष्णदास, पृ. 9

भी कोई न कोई व्यक्ति आता रहता था और परामर्श, सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त करता था. रात के भोजन के बाद वे घर के पशुओं की देखभाल, ग्रामवासियों से बातचीत तथा परिचकों को कुछ आदेश भी देते थे. रात में उनको नींद भी प्रायः कम ही आती थी. वे घर की महिलाओं से अत्यल्प ही बोलते थे.

कवि और सियारामशरण जी का साहित्यिक वार्तालाप कभी भी हो सकता था उसके लिए कोई निश्चित समय नहीं था.

उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में सादगी को ही महत्व दिया था. किंतु वे कंजूस नहीं थे. उनकी महानता उनके सहज आचरण, सरल व्यवहार और सादी वेशभूषा में सिमट नहीं पाती थी. उनका सारा कारोबार रईसी ढंग का था, पर वह सर्वत्र सात्विकता की आभा लिए हुए था. इस बृहद परिवार का स्वरुप संक्षेप में सबकी रुचि और आवश्यकता तथा कवि के व्यक्तित्व का सम्मिलित परिणाम था. उन्होंने तो अपने जीवन में मानवता को ही प्रधानता दी थी.

बाल्यावस्था में गुप्तजी ढीली- ढाली धोती, कुर्ते के ऊपर देशी कोट तथा लाल मखमल की जरी के कामवाली टोपी पहनते थे. झांसी में विद्याभ्यास करते समय उन्होंने साहबी पोशाक को अपनाया था. आल्हा पढते समय और कुश्ती लड़ते समय वे ढीला कुरता और खाकी रंग का साफा पहनते थे. बादमें उन्होंने साफा मुंशीजी को दे दिया और वे लाल पगड़ी पहनने लगे. पहले उन्होंने मूछें रखी थी, बादमें दाढी और फिर दोनों को ही छोड दिया. कुछ दिन तक वे पाजामा भी पहनते थे. बादमें, वे शुद्ध- खद्दर के वस्त्र धोती- कुर्ता गांधी टोपी तथा जवाहर बंडी पहनने लगे. वे टोपी और दुपट्टा बाहर जाते समय पहनते थे. वे चश्मा लगाते थे और घड़ी को अपनी जेब में ही सुरक्षित रखते थे.

14

भोजन भी उनको सादा ही अच्छा लगता था. वे जलपान के समय बासी पूडी खाते थे. और ब्यालू पूड़ी और अचार का करते थे. दोपहर के समय वे दो- तीन रोटियाँ ही खाते थे. वे चाय पीते थे लेकिन कभी2 दूध या दही भी लेते थे. वे खान-पान सभी के साथ करते थे. और ब्यालू अकेले करते थे. उनको सादा भोजन प्रिय था किंतु अतिथियों के साथ या पर्व त्यौहारों पर विशेष भोजन भी करते थे. बाहर से आई हुई मिठाईयाँ, फल और मेवे घर के लोगों के साथ ही खाते थे. गंगाप्रसाद ने लिखा है कि खान- पान के समय गुप्तजी सबकी थाली पत्तल देख आते थे. वे सबके साथ आनंद लेते थे.

वे घर के भीतर पट्टे पर बैठकर भोजन करते थे और दिल्ली या झांसी में टेबल पर बैठकर करते थे. वे जलपान और ब्यालू बैठक में करते थे, चौके में नहीं. " पूड़ी की चलन इसलिए है कि चौके से बाहर गई हुई रोटी वैष्णव कैसे खा सकते हैं ? पर अब वह अभ्यास मात्र है, नियम की कड़ाई नहीं. " [1]

वे तम्बाकू खाते थे पर कभी कभी हुक्का, सिगरेट, बीडी, चुरट भी पी लेते थे. वे मनोविनोद के लिए ताश और चौसर भी खेलते थे.

" उनकी आस्था रामायण- महाभारत तथा गांधी- विनोबा पर है, हर किसी कृति या व्यक्ति पर नहीं. " [2]

उन्होंने हार्दिकता और मानवीयता को महत्व दिया था. वे धनी

---

1. कवि से वार्तालाप - मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक- पृ. 63 से उद्धृत.
2. वही, पृ. 64.

व्यक्ति के आगे कभी विनयशील नहीं रहे. पर जो उनके करुणा के पात्र थे उन व्यक्तियों की वे सहायता करते थे. वे हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते थे. उन्होंने छूत- छात को महत्व नहीं दिया था.

उनको अकेले रहना पसन्द ही नहीं था. वे जब कुछ भी लिखते पढ़ते नहीं थे तब वे दो चार व्यक्तियों के साथ रहते थे. उनका भाई भतीजों से या अन्य लोगों से या अपने मित्रोंसे भी वार्तालाप होता था. वे सामाजिक प्राणी थे अतः समाज से अलग रहना पसंद नहीं करते थे.

वे प्रकृति प्रेमी थे. कालिदास और बंगला के कवियों के संसर्ग में आने से वे प्रकृति के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए थे. उन्होंने प्रकृति के बाह्य रुप को ही देखा है. " सिद्धराज " और " साकेत " में उनके प्रकृति प्रेम का दर्शन होता है.

वे अनुभूतिशील थे स्वकेन्द्रित नहीं. जैनेन्द्रकुमार ने लिखा है कि- " मैथिलीशरणजी कोमल हैं तो दूसरे को लेकर, भाव-प्रवण हैं तो दूसरे के निमित्त. मानों स्वयं उनके पास कुछ खर्च को नहीं है. पुण्य- श्लोक पुरुषों की गाथाएँ हैं और उनका ही गान उन्हें बस है. उसके आगे अपना निज का आवेदन- निवेदन क्या ? " ।

वे जीवनभर प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने जूझते रहे. अनेक संतानों की मृत्यु के बाद भी वे हँसते ही रहे. उन्होंने रोग का भी हँसकर सामना किया. वे आर्थिक कठिनाइयों के सामने जूझते रहे और साहित्य की साधना भी अनवरत करते रहे. उन्होंने जीवन में उत्कर्ष और विकास को प्रधानता दी है.

वे कभी निराश और अविनयी नहीं हुए. वे विरोध करनेवालों से भी

---

1. " ये और वे " जैनेन्द्रकुमार- पृ. 8।

16

डरते नहीं थे. वे सम्मान प्राप्त करने की कभी इच्छा नहीं करते थे. " संक्षेपमें, तपस्त्याग और विनय, सात्विकता और आशावाद तथा युगचेतना और अन्याय का विरोध गुप्तजी के व्यक्तित्व के संघटनकारी अवयव हैं. " [1]

सन 1920-11 में शिरोरोग गुप्तजी का जीवनसंगी बन गया था. सन 1928-29 में वे अधिक समय तक बीमार रहे. अंत में सन 1964 में वे इस असार संसार को छोड़कर चले गये.

" मैथिलीशरण गुप्त के विश्लेषण के लिए वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि, लोकोत्तराणि चेतांसि " वाली पंक्ति संभवतः सर्वोत्कृष्ट कसौटी है, और उनके व्यक्तित्व की यही द्वैतता इतनी रमणीय है कि वह एक स्थायी स्नेहबंधन बनकर संपर्क में आनेवाले को तुरत आबद्ध कर देती है." [2]

गुप्तजी को अपने शैक्षणिक जीवन काल से ही साहित्य सृजन के लिए प्रेरणा मिली. उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर उनके पिता का अधिक प्रभाव पड़ा. कवि बाल्यावस्था में अपने पिता के धार्मिक व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और उन्होंने काव्य रचना का आरंभ किया. आगे चलकर वे परिवार अन्य सदस्यों के साथ अनेक मित्रों के सम्पर्क में भी आये. स्व. मुंशी अजमेरी

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - कमलाकांत पाठक पृ. 73
2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - " मैथिलीशरणजी के व्यक्तित्व की द्वैतता - श्री रायकृष्णदास, पृ. 11

गुप्तजी के निकटतम व्यक्ति थे. मुंशीजी गुप्तजी के परिवार का ही एक अंग थे. गुप्तजी के समस्त साहित्यिक कार्यकलाप में उनका योगदान रहता था. अन्य साहित्यिक व्यक्तियों में कवि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी से अधिक प्रभावित हुए. गुप्तजी के लिए आचार्य द्विवेदी जी परम आराध्य थे. उन्हें वे अपना काव्य गुरु मानते थे. उन महानुभावों के अतिरिक्त कवि रायकृष्णदास, जयशंकर प्रसाद, बाल मुकुन्द गुप्त, राजा रामपालसिंह, डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा, बालकृष्ण शर्मा " नवीन ", माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, दुर्गादत्त पंत, डॉ० श्यामसुन्दरदास, श्री केशवप्रसाद मिश्र, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, कृष्णदेवप्रसाद गौड़, बनारसीदास चतुर्वेदी, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन - " अज्ञेय ", जैनेन्द्रकुमार, डा० नगेन्द्र तथा सेठ गोविन्ददास आदि के सम्पर्क में आये. रायकृष्णदास उनके घनिष्ठ मित्र थे . प्रसादजी और गुप्तजी की मित्रता के केन्द्रबिन्दु भी रायकृष्णदास ही है. स्वर्गीय वाईस्वत्यजी ने कवि को " साकेत " की रचना के लिए प्रेरणा दी. राष्ट्रीय नेताओं में कवि का राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से घनिष्ठ संबंध था. कवि महात्मा गांधी के जीवन दर्शन से भी प्रभावित हुए. महामना मालवीयजी और डा० राजेन्द्रप्रसाद से भी उनका सम्बन्ध रहा है. गुप्तजी श्री जवाहरलाल का आदर करते थे. विनोबाजी के प्रति भी कवि को बड़ी श्रद्धा थी. इस प्रकार गुप्तजी ने कई व्यक्तियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया.

गुप्तजी को अपने जीवन में बहुत आदर सम्मान मिला. किन्तु वे प्रतिष्ठा मोही व्यक्तियों में नहीं थे. " भारत- भारती " के प्रकाशित होते ही कवि " राष्ट्रकवि " बन गया. " साकेत " के प्रकाशन ने उस बिरुद को सार्थक किया. सन 1935 में हिन्दुस्तानी अकादमी ने उनको पाँच सौ रुपये का पुरस्कार दिया. सन 1937 में साहित्य सम्मेलन ने बारह सौ रुपये का " मंगला प्रसाद " पुरस्कार दिया. सन 1936 में गुप्तजी की जगह- जगह पर स्वर्ण जयन्ती मनायी गयी. उस समय कवि की आयु पचास वर्ष की थी.

काशी में " तुलसी मीमांसा परिषद " की ओर से गांधीजी के कर कमलों द्वारा कवि को " मैथिली काव्य-मान-ग्रंथ " भेंट किया गया. सन 1942 में आगरा की नागरी प्रचारिणी सभा फिरोजाबाद के भारतीय भवन पुस्तकालय तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी छात्रों ने कवि को सम्मानित किया. 27 जुलाई 1941 को आगरा सेंट्रल जेल के राजबंदियों ने कवि की छप्पनवीं वर्ष-गांठ के अवसर पर अभिनन्दन किया. 11 अगस्त 1945 को कलकत्ते में गुप्त हीरक जयन्ती महोत्सव समिति ने कवि को अभिनंदन दिया. सन 1946 में काशी की " नागरी प्रचारिणी " सभा ने कवि की हीरक जयन्ती का आयोजन किया. और कवि को दस हजार रुपये भेंट में दिये गये. कवि की हीरक जयन्ती जगह जगह मनायी गयी. उनकी स्वर्ण जयन्ती भी जगह जगह मनायी गयी थी. सन 1946 में साहित्य सम्मेलन के कराची अधिवेशन में गुप्तजी को " साहित्य वाचस्पति " की उपाधि से सम्मानित किया गया. सन 1948 के नवम्बर में आगरा विश्वविद्यालय ने गुप्तजी को डी० लिट० की उपाधि प्रदान की. राष्ट्रभाषा परिषद, गायघाट, काशी ने गुप्तजी को 1951 में मानपत्र द्वारा सम्मानित किया. 6 सितम्बर 1952 को कवि ने इन्दौर में वीर वाचनालय का शिलान्यास किया. इसके आसपास संसदीय हिन्दी परिषद, नई दिल्ली का उद्घाटन किया. बम्बई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के समावर्तनोत्सव की अध्यक्षता कवि ने सितम्बर 1952 में की. इसी समय देश में जगह जगह उनकी जयन्तियाँ मनाई गई और उनका सम्मान किया गया. नई दिल्ली के अनेक साहित्यिक उत्सवों और कवि सम्मेलनों के वे अध्यक्ष रहे. मार्च 1952 में उत्तर- प्रदेश शासन द्वारा " अंजलि और अर्घ्य " , " हिडिम्बा " और " पृथिवी पुत्र " पर आठ सौ रुपये का पुरस्कार दिया गया. लेकिन कवि ने इसको स्वीकार नहीं किया. सन 1954 में भारत सरकार ने गुप्तजी को " पद्म भूषण " की सम्मानित उपाधि प्रदत की. जिसकी सनद सन 1955 के लोकतंत्र दिवस पर राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा भेंट की गई. कवि को सन 1954 में काशी हिन्दू

19

विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के सम्मानित प्रोफेसर नियुक्त किये गये. सन 1952 में वे भारतीय राज्य सभा में राष्ट्रपति द्वारा छः वर्ष के लिये मनोनीत किये गये और अवधि की पूर्ति पर वे दुबारा भी मनोनीत किये गये. वे राज्य-सभा के सदस्य थे. तब सभा के अधिवेशन के दिनों में वे दिल्ली रहते थे बाकी उनका स्थिर वास चिरगाँव, झाँसी था. " हिन्दी साहित्य में वे राष्ट्र- कवि के पद पर, निर्विरोध लोकमत से प्रतिष्ठित हैं. वे एम० पी० पद्म भूषण, डॉक्टर या प्रोफेसर के रूप में सुख्यात नहीं है, पर उनकी राष्ट्र-कवि की पद- प्रतिष्ठा सर्वजन- सम्मत है. " [1]

राजनीतिक एवं राष्ट्रीय

अंग्रेजों के आगमन के कारण भारतीय अंग्रेजी भाषा, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित हुए. हिन्दुओं के विचारों में उन्मुक्तता आई, और उनमें सामाजिक समता, धार्मिक समन्वय और राष्ट्रीय चेतना की भावना पनपने लगी. इस नवीन चेतना ने समाज के नैतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी पक्षों को स्पर्श किया. भारतीय जनता में नवजागरण की एक लहर दौड़ गई.

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई. औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का अधःपतन

---

1. " सामयिक साहित्य में गुप्तजी को यही अभिधेय दिया भया जाता है और वह सुप्रचलित हो गया है. "
   मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - कमलाकांत पाठक
   पृ. 36 से उद्धृत.

और विनाश हुआ. मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत की आन्तरिक राजनीतिक परिस्थिति का लाभ अंग्रेजों ने उठाया. और उन्होंने " भारत में अपनी शक्ति संगठित करने की विविध योजनाएँ कार्यान्वित कर दी थीं. तथा कालान्तर में हमारे द्वारा, हमारी सम्पत्ति तथा हमारी सेवाओं के बल पर वे इस देश के शासक बन बैठे और लम्बे अर्से तक शासन करते रहे. "[1]

सन् 1818 में पेशवाई को खत्म करके स्टुअर्ट एल्फिंस्टन ने अंग्रेजों का सार्वभौमत्व भारत में स्थापित कर दिया. इस समय बम्बई के गवर्नर माउन्ट स्टुअर्ट एल्फिंस्टन तथा मद्रास के गवर्नर सर टामस मनरो थे. इसी समय से धीरे धीरे भारतीस जनता के हृदय में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिक्रिया की भावना पैदा होने लगी थी. सन् 1819 में सर टामस मनरो ने एल्फिंटन, सर जॉन माल्कम तथा मेकेन्टाश को लिखा था कि हमारा भारतीय साम्राज्य अधिक समय तक नहीं टिकेगा यह मत महज एक कुशंका नहीं बल्कि युक्तियुक्त है. इस साम्राज्य का अंत किस प्रकार होगा, यह समझना बड़ा मुश्किल है.

अंग्रेजी राज्य-व्यवस्था के विरुद्ध सबसे पहली क्रान्ति सन् 1857 ई. में हुई थी जो भारत स्वातंत्र्य आंदोलन के नाम से इतिहास प्रसिद्ध है. सन् 1833 अर्थात् राजा राममोहनराय के समय तक भारत में अंग्रेजी राज्य जम गया था और इसके विरोध में अनेक आन्दोलन भी हो रहे थे. इन आंदोलनों का नेतृत्व गांधीजी ने संभाला. " गांधीजी का समय सन् 1869 से 1948 तक का था. इस काल में अंग्रेजी राज्य पूरा जमकर फिर उखड़ने लगा. धूल पर लिपाई की पपड़ी ऊपर नीचे होती है, वैसी कुछ बात हुई. इस प्रकार यह काल अंग्रेजी राज्य का उत्थापना युग था. "[2]

---

1. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव - डा० अरविन्द जोशी, पृ. 20
2. कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभिसीतारामैया- पृ. 5

अंग्रेजों ने सिंध, पंजाब, अवध आदि की स्वाधीनता का अपहरण किया. उन्होंने नाना साहब का पेंशन बंद करवा दिया. सिविल सर्विस परीक्षाओं में भारतीयों के विरुद्ध अनुचित व्यवहार किया गया. जिससे जनता में असंतोष की ज्वाला भभक उठी.

वेलेजली ने देशी राजाओं को फौजी मदद देने का बहाना बनाकर अनेक राजाओं को अपने आधीन कर लिया. डलहौजी ने भी वेलेजली की नीति का अनुसरण किया. जिसका परिणाम यह हुआ कि देशी राजाओं तथा नवाबों में असन्तोष की भावना जागृत हुई. विचारशील हिन्दुस्तानियों ने देश इस विदेशी जुए को उतार फेंकने के लिए एक प्रबल और गुप्त आंदोलन का प्रारम्भ किया. बादमें इस आंदोलन के फलस्वरुप 1857 में स्वाधीनता की पहली लड़ाई का आरम्भ हुआ.

इस आन्दोलन के बारे में पट्टाभिसीतारामैया ने लिखा है - " निःसंदेह 1857 का विद्रोह अंग्रेजी सत्ता को मिटाने का महान उद्योग था. जिसका प्रभाव कालान्तर में स्पष्ट हुआ. इस स्वतंत्रता संग्राम की पराजय के बाद ही भारत अंग्रेजी साम्राज्य की बेड़ियों में जकड़ गया. अंग्रेजों ने प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता एवं वर्ग भेद के आधार पर सेनाओं का संगठन किया. मनसबदारियां बांटी गई, छोटे छोटे सामंतों को जनता के मनोबल को तोड़ने के लिए प्रोत्साहित कर उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने का पूरा प्रयास किया. " [1]

इस महान क्रान्ति का कारण जनता का असन्तोष था. यह क्रान्ति विदेशी शासन को हटाने के लिए हुई थी. लेकिन सन् 1857 के देश इस आन्दोलन को निष्फलता मिली. सरकार ने उसको कुचल डाला. परन्तु इस

----

1. कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभिसीतारामैया, पृ. 5

22

विग्रह से यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय जनता में देश- प्रेम तथा स्वाधीनता की भावना बलवती हो रही है. सन 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ. उसका बीज सन 1857 का आन्दोलन ही था. इस आन्दोलन के बाद भारतीयों में आत्म विश्वास की भावना पैदा हुई. " स्वतंत्रता संग्राम के इस महायज्ञ की ज्वालाओं के फलस्वरुप भारतीयों के राष्ट्रीय जीवन में आशा और आत्मविश्वास की वह ज्योति प्रकट हुई जिसने लगभग 60 वर्ष तक निरंतर प्रज्वलित रहकर देश को स्वतंत्रता दिलाने में महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान की. " [1]

इस आन्दोलन के बाद कंपनी का राज्य समाप्त हुआ और सन 1858 ई. से महारानी विक्टोरिया ने भारत का शासन सूत्र संभाला. जिससे भारत में अशान्ति और अविश्वास की भावना कम हुई. महारानी ने कहा कि- " महारानी की प्रजा के लोग चाहे वे किसी भी जाति, रंग व धर्म के हों, बिना किसी रोकटोक एवं भेद- भाव के सरकारी नौकरियों में उनकी शिक्षा, योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार भरती किये जायेंगे." [2] लेकिन इन शब्दों का कभी भी पालन नहीं हुआ. किसानों की दशा पहले से भी अधिक दयनीय हो गई. सरकारी नौकरियों में गोरे- काले का भेद भाव रखा जाता था, पुलिस भी अत्याचार करती थी. जिससे सारे देश में राजनीतिक अशान्ति थी. सन 1877 ई. में ब्रिटिश राजकुमार भारत आये तब भारतवासियों ने उनका स्वागत किया. लेकिन इसके बाद सन 1878 ई.

---

1. गांधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव- डा० अरविन्द जोशी, पृ. 24
2. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य रामबिहारी मिश्र, पृ. 42.

23

में एक दूसरा ऐक्ट बनाया गया जिसका नाम था भारतीय शस्त्र ऐक्ट . अर्थात भारतीय अंग्रेज सरकार की आज्ञा के बिना शस्त्र रख नहीं सकते थे. संक्षेप में " सरकार के अशुभ और विरोधी कानून, पुलिस का दमन, लार्ड लिटन का प्रतिगामी शासन, [1876-80], खर्चीला दरबार, कपास के यातायात कर का उठाया जाना [1877 ई.], वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट [1878 ई.], अफगान युद्ध [1878-1882] आदि बातों ने देशवासियों को पराधीनता के शाप का अनुभव कराया. विश्वविद्यालयों में शिक्षित नवयुवकों ने जनता के साथ पाश्चात्य इतिहास और राजनीति के उदाहरण उपस्थित किए. " [1]

सन 1857 और उसके बाद की अनेक भीषण यातनाओं के बाद भी अंग्रेज भारतवासियों को अपना मित्र बनाने में असफल रहे. तब एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम सोचने लगे कि " अगर हिन्दुस्तानियों से उनकी शिकायतें सुनने की व्यवस्था हो सके तो इससे अंग्रेजी शासन का भी हित हो सकता है और हिन्दुस्तानियों का बढ़ता हुआ असन्तोष भी दूर हो सकता है. " [2] उन्होंने 1 मार्च सन 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को एक पत्र लिखा. इस पत्र के द्वारा उन्होंने यही इच्छा व्यक्त की कि केवल पचास निःस्वार्थ, सत्यनिष्ठ, आत्मसंयमी और नैतिक बल संपन्न युवकों की सहायता से ही वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना कर सकते हैं. उस समय देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विचारधाराओं को संतुष्ट करने के लिए एक ऐसी संस्था अनिवार्य थी. " अंत में राज्य और जनता में पारस्परिक स्नेह संबंध स्थापित करने के लिए शासकों को उनकी शासन सम्बन्धी त्रुटियां बताने के लिए तथा शासक और शासित के मध्य उत्पन्न वैमनस्य को दूर करने के लिए सन 1885 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की स्थापना

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग- उदयभानुसिंह, पृ. 3
2. कांग्रेस का सरल इतिहास- राजबहादुर सिंह, पृ. 8

24

हुई. " [1]अर्थात् देशव्यापी अशान्ति को शान्त करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय सभा कांग्रेस की स्थापना की गई. जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी सहयोग दिया. " इसका उद्देश्य पहले तो भारतीयों में प्रशासकीय कार्यों में सहयोग देने की भावना का विकास करना था. परन्तु जब इसमें बाल गंगाधर तिलक जैसे व्यक्ति आये तब यह स्वाधीनता प्राप्त करनेवाली संस्था के रुप में बदल गई . " [2] अपने निर्माण के कुछ काल के बाद ही कांग्रेस का रुप अंग्रेजों के अरुचिकर और घृणास्पद बन गया क्योंकि निर्माण के बाद वह क्रमशः भारतीय राष्ट्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने लगी. सरकार कांग्रेस के अधिवेशनों में बाधा डालने लगी और सरकारी नौकर कांग्रेस कमेटीयों में भाग नहीं ले सकते थे. विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण लादे गये. बंगाल का विभाजन किया गया. और भारतीयों को लांछित किया जाने लगा. सारे देश में क्रान्ति की एक लहर फैल गई. फलस्वरुप भारतीयों में राष्ट्रीयता का भाव पैदा हुआ. इस राष्ट्रवाद की लहर सबसे पहले बंगभूमि में उठी और बादमें उसी लहर ने राष्ट्रीय चेतना का रुप लिया. इस नवीन चेतना का कारण बंग-भंग था. बंग-भंग के बारे में रोनल्डरो ने लिखा है कि उस समय के बंगाल में बिहार और उड़ीसा भी सम्मिलित थे, अतः उसका विभाजन तो होना चाहिए था परन्तु जिस रुप में वह किया गया वह बिलकुल मनमाना था. और इसका उद्देश्य लोर्ड रोनल्डरो के शब्दों में बंगाली राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई दृढता पर आक्रमण करना था. बंगाल विभाजन की घटना से

---

1. साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन- द्वारिकाप्रसाद सक्सेना- पृष्ठ- 37.
2. कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभिसीतारामैया, पृष्ठ 51.

25

एक नये आन्दोलन ने जन्म लिया जो बंग-भंग के नाम से प्रसिद्ध है. इसके प्रतिरोध में जनता ने क्रान्तिकारी मार्ग अपनाया. अंग्रेजों का भारतीयों के साथ व्यवहार दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों से अच्छा नहीं था. जिससे भारतीयों में सरकार के विरुद्ध भावनाएँ अधिक बलवती हुई. महात्मा गांधी ने सन 1907 में दक्षिणी अफ्रीका में सत्याग्रह किया. इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस सरकार भारतीय जनता का विश्वास खो बैठी. बंग-भंग आंदोलन इसी रोष का परिणाम था. यह आंदोलन बंगाल तक सीमित नहीं रहा बल्कि सारे देश में फैल गया. सन 1906 में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य स्पष्ट कर दिया. कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य प्राप्ति ही था. एक ओर अंग्रेजों के विरोध में सभाएँ, हडताल, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि योजनाएँ चल रही थीं, वहीं कांग्रेस नरमदल और गरमदल में विभाजित हो गई. लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय और विपिनचन्द्र पाल गरमदल के नेता थे. तिलक जी को कारावास मिला. कारागृह से बाहर आते ही उन्होंने कहा कि " स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हैं." बंग -विभाजन से बंगाल के युवकों में जागृति आई. इस आंदोलन का नेतृत्व तिलकजी ने संभाला था. बादमें, भारतीय प्रजा हिंसात्मक कार्य करने लगी. खुदीराम बोस को फांसी मिली. सन 1908 में मुजफ्फरपुर में तिलक जी ने बम-विस्फोट का समर्थन किया. बादमें, तिलक जी को आठ वर्ष के लिए कारावास मिला. इस उग्रदल को कांग्रेस का समर्थन नहीं मिला. सरकार इस उग्र राष्ट्रीयता को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करने लगीं.

" इसी बीच में मुस्लिम लीग का जन्म हो गया था जिसके मूल में लोर्ड कर्जन की बंग-भंग नीति द्वारा हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की भावना थी. इसका जन्म भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा के लिए हुआ था. "[1]

---

1. गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना- नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, पृ. 14-15

26

" राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति के सम्मुख सरकार को झुकना पड़ा और 1909 में मार्ले- मिण्टो सुधारों की घोषणा की गई तथा 1911 में बंग- भंग रद्द कर दिया गया. " [1]

पहले तो यह साम्प्रदायिक संस्था राष्ट्रीयता के विकास में बाधक ही सिद्ध हुई परन्तु 1913 ई० से हिन्दू- मुस्लिम एकता को प्रोत्साहन मिला. सन 1914 में प्रथम महासमर शुरु हुआ. सन 1915 ई० में गांधीजी अफ्रीका से भारत आये. उस समय कांग्रेस में सुस्ती आ गई थी. नरम और गरम दोनों दल अपना प्रभाव दिखाने में असमर्थ थे. तब ऐसे नेता की जरुरत थी कि जो सारे देश की बागडोर अपने हाथों में ले. उस समय गांधीजी कांग्रेस में सम्मिलित हुए. गांधीजी के आते ही कांग्रेस में लोग सम्मिलित होने लगे. सन 1916 में श्रीमती एनी बीसेण्ट ने होमरुल सिद्धान्त का खूब प्रचार किया. गांधीजी को भारत में सन 1917 में सत्याग्रह की नीति से गिरमिट प्रथा को बंद करने में सफलता मिली. तथा चम्पारन के नीलक्षेत्रों के किसानों का पक्ष इस नीति से ही विजय प्राप्त कर सका.

सन 1918 ई० में गांधीजी ने सत्याग्रह के द्वारा ही गुजरात के खेड़ा और अहमदाबाद के अकालपीड़ित कृषकों की समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया. " इससे भारतवासियों के विचार जगत में एक अद्भुत क्रांति हुई. किसी ने समझा कि ब्रिटिश राज को भी झुका देने की शक्ति गांधीजी के पास है, किसी ने समझा कि यह हमारे उद्धार का एक ऐसा साधन है जो भारतभूमि में उग और फूल फल सकता है. निःशस्त्र निर्बल जनता के हाथ में यह सबल आत्मिक अस्त्र देकर गांधीजी ने एक नये युग का सूत्रपात किया. "[2]

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- राजबिहारी मिश्र. पृ, 74
2. हिन्दी कविता में युगान्तर- डा० सुधीन्द्र. पृ. 32

"गांधीजी द्वारा अहमदाबाद के मिल मजदूरों के संगठन की कहानी उपन्यास की भाँति ऐसी रोमांचकारी है कि उससे किसी भी जाति की स्वतंत्रता के इतिहास की शोभा बढ सकती है." [1] मिल-मालिक और मजदूरों की समस्या को हल करने के लिए उन्होंने सत्याग्रह का आश्रय लिया. मजदूरों की हड़ताल को शक्ति देने के लिए वे स्वयं उपवास करने लगे. अंत में मजदूरों की विजय हुई और मिल- मालिकों को झुकना पड़ा. इस प्रकार पहली बार गांधीजी ने औद्योगिक संघर्षों के लिए अहिंसा का आश्रय लिया जिसमें उनको सफलता मिली.

प्रथम महायुद्ध तक, भारत अंग्रेजों की सहायता करता रहा. लेकिन इस युद्ध के बाद भारतीय प्रजा को उपहार के रुप में काला कानून दिया गया. 10 दिसम्बर सन् 1919 को एस० ए० टी० रौलेट ने " रौलेट बिल " नामक कानून बनाने का निश्चय किया. इसके विरोध में 6 अप्रैल सन् 1919 ई० में देशव्यापी सत्याग्रह आरंभ हुआ. इस समय गांधीजी ने सारे देश का नेतृत्व संभाला और अहिंसात्मक सत्याग्रह के लिए घोषणा की. इस आंदोलन का आरंभ उन्होंने अपने पवित्र उपवास के साथ किया. उस समय संपूर्ण देश में एकता की लहर फैल गई थी. असहयोग आन्दोलन सारे देश में फैल गया था. उस समय लोकमान्य तिलक विलायत में थे. उन्होंने आकर खेद प्रकट करते हुए कहा- " मुझे खेद इतना ही है कि जब गांधीजी ने सत्याग्रह किया तो उसमें सम्मिलित होने के लिए मैं यहाँ न था. " [2]

जब आन्दोलन चल रहा था तब चौरी-चौरा नामक घटना घटी. वे दोनों जातियों के बीच एकता स्थापित करना चाहते थे. इसीलिए उन्होंने उपवास किये. भारत की प्रजा के लिए रौलेट ऐक्ट ही काफी नहीं

---

1. कांग्रेस का इतिहास, पट्टाभिसीतारामैया [संक्षिप्त], पृ. 115
2. हिन्दी कविता में युगान्तर- डा० सुधीन्द्र, पृ. 34

28

था. जलियाँवाला बाग में निर्दोष जनता पर अमानुषी अत्याचार किया गया. पराधीन राष्ट्र को प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों के मूक समर्थन का उपहार मिला. इन सब बातों से भारतीय प्रजा में क्रांति की भावना पैदा हुई.

1 अगस्त सन 1920 को असहयोग की घोषणा की गई. इस आंदोलन में भारतीयों ने उपाधियां लौटा दी. सरकारी शिक्षा का तथा अदालतों का बहिष्कार किया गया. उन्होंने विदेशी माल का तथा धारासभाओं का भी बहिष्कार किया. शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों ने इस आंदोलन में सक्रिय भाग लिया. मौलाना-शौकत अली और मुहम्मद अली के नेतृत्व में अनेक मुसलमानों ने भी भाग लिया. इस आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने जबर्दस्त दमनचक्र चलाया. कई जगह गोलियाँ चलाई गई. फिर भी लोगों का जोश कम न हुआ. बहुत से लोग बिना मुकदमा लड़े जेलों में पडे रहे, फिरभी उन्होंने हिम्मत न हारी.

गांधीजी को 16 मार्च सन 1922 को छ: मास के लिए कारावास का दंड दिया गया. सन 1924 में उनको मुक्ति मिली. इसके बाद उन्होंने साम्प्रदायिक एकता के उद्देश्य से 21 दिन के उपवास किये.

मद्रास में कांग्रेस - अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता पर विचार किया गया. सन 1929 के आसपास केन्द्रीय असेम्बली में भगतसिंह द्वारा बम फेंका गया. इसी समय भारत में साईमन कमीशन आया. लेकिन भारतीय जनता ने इसका बहिष्कार किया. लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में इस कमीशन का विरोध किया गया. पुलिसवालों ने प्रतिष्ठित नेताओं को डंडों और लाठियों से पीटना शुरु किया. लालाजी को गहरी चोटें आईं. यह एक खयाल बना रहा कि उनकी मृत्यु इस हमले के कारण हुई.

नवम्बर सन 1929 को उस समय के युवराज एडवर्ड को भारत भेजा गया. उनके आते ही सारे देश में विदेशी माल की होली जलाई गई.

29

कांग्रेस का अड़तालीसवाँ अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ जिसमें यह प्रस्ताव रखा गया कि जब तक पंजाब हत्याकाण्ड और खिलाफत के अत्याचारों का निवारण नहीं होगा, भारतीयों को स्वराज्य नहीं मिलेगा, तब तक यह अहिंसात्मक असहयोग कार्यक्रम चालू रहेगा. वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान की हुकूमत जनता के हाथ में आनी चाहिए. सरकार जनता की माँगों को अस्वीकार करती रही, तब सामूहिक सत्याग्रह शुरु किया गया.

सन 1929 ई० में भारत की आन्तरिक स्थिति भी गंभीर हो गई थी. विद्यार्थी, मजदूर, किसान सभी में आक्रोश की भावना थी. लाहौर कांग्रेस में नेहरु ने साम्राज्यवादी व्यवस्था पर चोट की. सन 1929 में लाहौर के अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा की. 26 जनवरी 1930 के दिन को स्वराज्य दिन मनाया गया. उसी दिन भारतीयों को चर्खा कातने के लिए कहा गया. मदिरा का और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति का बहिष्कार किया गया. 12 मार्च सन 1930 को गांधीजी ने ऐतिहासिक यात्रा का आरंभ किया और 16 अप्रैल को उन्होंने नमक कानून तोड़ा. साबरमती से 200 मील पर स्थित दण्डीग्राम में गांधीजी ने नमक कानून के विरोध में सत्याग्रह किया. गांधीजी गिरफ्तार हुए तब सारा देश उत्तेजित हो गया। सरकार ने भी उस आंदोलन को कुचलने के लिए अनेक प्रयत्न किये. सन 1932 ई० में गांधीजी लन्दन में इरविन के साथ गोलमेज सभा में उपस्थित रहे. लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं आया, तब वे भारत लौट आये और उन्होंने आंदोलन का पुनः आरंभ किया. गांधीजी और अन्य नेताओं को कारावास देकर सरकार ने हरिजनों के लिए पृथक चुनाव की योजना बनाई कि जिससे देश की शक्ति क्षीण हो जाय. इस योजना के विरोध में गांधीजी ने 21 दिन के उपवास किये. भगतसिंह और साथियों को फांसी दी गई. इसके विरोध में भारतीयों का क्रोध भभक उठा. तब गांधीजी ने बड़े विवेक से उनकी उत्तेजना शान्त की. इसकी " गोलमेज परिषद " का भी कोई परिणाम नहीं निकला. गांधीजी भारत और इंग्लैण्ड के बीच समानाधिकार स्थापित करना चाहते थे. लेकिन इस कार्य में उनको निष्फलता

· 30

मिली. तब वे 28 दिसम्बर को भारत लौट आये. सन 1935 ई० में " इंडिया एक्ट " पास हुआ. जिससे आठ प्रान्तों में कांग्रेस सरकार की स्थापना हुई.

सन 1939 ई० में द्वितीय महायुद्ध का आरंभ हुआ उसमें कांग्रेस ने सहयोग के लिए जिन शर्तों को प्रधानता दी थी उनका अस्वीकार किया गया. 11 अक्टूबर सन 1940 को गांधीजी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन का आरंभ किया. जब इसका महासमर शुरु हुआ तब भारत के ग्यारह प्रान्तों में स्वायत्त शासन था लेकिन किसी भी प्रान्त की सलाह लिये बिना ही भारतको युद्ध में घसीटा गया. और भारत से धन- जन की सहायता वहाँ भेजी .

अगस्त सन 1942 में बम्बई की अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक में " भारत छोडो " का ऐतिहासिक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसमें स्पष्ट शब्दों में स्वतंत्रता की माँग की गई. " अंग्रेजो भारत छोड़ो आन्दोलन " से सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला फैल गई. सरकार ने पुलिस और फौज की मदद से इस आन्दोलन का शमन किया. सन 1942 की क्रांति सन 1857 के आन्दोलन से भी भयानक थी. सरकार ने कई नेताओं को गिरफ्तार किया. नेताओं की अनुपस्थिति में जनता ने अपने हाथों में आंदोलन का सूत्र ले लिया. जनता ने तार काटे, थानों में आग लगा दी आदि हिंसापूर्ण कार्य किये. जिससे सरकार ने दमनचक्र शुरु किया.सरकार यह प्रचार कर रही थी कि इस रक्तपात के लिए कांग्रेस जिम्मेदार हैं. गांधीजी कारागृह से कांग्रेस की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे. परन्तु उनका कोई प्रभाव नहीं पडा तब उन्होंने उपवास किये.

इस प्रकार एक ओर राष्ट्रीयता की लहर सर्वत्र फैल गई थी तो दूसरी ओर भीषण अकाल पड़ा. जिसमें चालीस लाख व्यक्ति मर गए. इसका

31

महासमर सन् 1942 का आन्दोलन तथा बंगाल का अकाल आदि से वह समय उथल-पुथल का ही रहा " अंग्रेजों के भीषण दमनचक्र के साथ साथ स्वार्थ की दरिया में पैदा हुए भारतीय पूंजीपतियों के हाथ से जनता को पिसना पड़ा. अकाल की भीषणता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि द्वितीय महायुद्ध के दौरान उतने व्यक्ति नहीं मरे थे. " [1]

सन् 1942 के बाद अंग्रेज भलीभाँति समझ गये थे कि अब भारत को स्वतंत्र करना पड़ेगा. अब वे भारत छोड़ने के लिए तैयार हुए. सन् 1944 ई० में लार्ड वैवेल ने सभी नेताओं को छोड़ दिया. इसके पश्चात सन् 1946 ई० में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों का एक दल भारत आया. उन्होंने भारत की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया और भारत को स्वतंत्र करने की सलाह दी. अंग्रेजों ने भारत छोड़ते-2 समय भारत को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान नामक दो भागों में विभाजित किया. -" लाखों शरणार्थी पाकिस्तानी प्रदेशों से भागकर हिन्दुस्तान आये. खून से रंगी हुई धरती पर घृणा के बीज बो कर, सोने की चिड़िया के पैर काट कर, उसे तड़फड़ाता हुआ छोड़कर, अंग्रेज अपने देश वापिस चले गये. 15 अगस्त 1947 को भारत का स्वतंत्र राष्ट्र के रुप में, विश्व जनमत के सामने प्रादुर्भाव हुआ. " [2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उनके कष्टों का अंत नहीं हुआ था. दोनों देशों में एक साथ भीषण दंगे हुए जिसमें हत्या, लूट, बलात्कार

---

1. गत दो दशकों के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - नरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी पृ. 17.
2. वही- पृ. 19

32

आदि पाशविक घटनाएँ एक साथ घटी. " आबादियों की अदला-बदली भी एक करुणाजनक वस्तु थी, हजारों व्यक्ति बेघरबार हो गए. धनी टुकड़ों के मुहताज बन गए. मार्ग के कष्ट और यातनाएँ, शरणार्थी कैम्पों की दुर्दशा और जीविका-विहीनता की कठिन परिस्थितियाँ, देश के घर घर की कहानियाँ बन गई. "[1] अंत में 26 जनवरी सन् 1950 में नये संविधान के अनुसार भारत एक गणराज्य के रुप में अस्तित्व में आया. भारत का नया संविधान लगभग 400 अनुच्छेदों में लिखा गया था. डा० राजेन्द्रप्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति और पं० जवाहरलाल नेहरु भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे.

" गुप्तजी की राष्ट्रव्यापी प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर कांग्रेस की विचारधारा और गांधीजी के राजनीतिक आदर्श के समीप आती गई और वे भारतीय स्वातंत्र्य- संग्राम के अग्रणी कवि सिद्ध हुए. "[2]

" गांधीजी जब अफ्रीका में थे तभी कवि ने उन्हें " अफ्रीका प्रवासी भारतवासी " कविता अवलोकनार्थ भेजी थी. "[3] और कृषक कथा की रचना की थी.[4] जो किसान शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई. स्व. गणेश-शंकर विद्यार्थीजी का संसर्ग कवि की राजनीतिक चेतना के परिष्कार में विशेष

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- रामबिहारी मिश्र, पृ. 225
2. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक, पृ. 98
3. स्वदेश संगीत- पृ. 113
4. कृषक कथा, सरस्वती जुलाई, अगस्त, सितम्बर 1915 मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक- पृ. 98 से उद्धत.

33

रुप से सहायक हुआ और वह आतंकवादियों के संपर्क में भी आया. " [1]

कवि गांधीजी के राष्ट्रवाद से ही प्रभावित नहीं हुआ बल्कि उन्होंने उनके राजनीतिक आदर्शों को भी अपनाया है. गुप्तजी भी गांधीजी की भांति अहिंसक राज्य क्रांति के पक्षपाती रहे हैं. अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू-मुसलमानों में एकता, खादी और ग्रामोद्योग आदि विषयों को गुप्तजी ने इसीलिए अपने काव्य का आधार बनाया है. उन्होंने गांधीजी, श्री विनोबा भावे, जवाहरलाल जी और स्वर्गीय पटेल का राष्ट्र- प्रतिनिधि के रुप में स्तवन किया है. " [2]

" अजित " में उन्होंने हिंसक क्रांति पद्धति को अनुपयुक्त सिद्ध किया है. तथा सत्याग्रह और अहिंसा की नीति को उपयुक्त माना है. " अंजलि और अर्घ्य " गांधीजी की मृत्यु के पश्चात् लिखी गई कृति है. " राजा-प्रजा " की रचना रियासतों के विलीनीकरण को लेकर हुई है. इससे प्रजातंत्र के स्वर ध्वनित होते हैं.

" निश्चय ही गुप्तजी का राजनीतिक दृष्टिकोण भौतिकवादी नहीं है, मानवतावादी है. गांधी- दर्शन से अनुप्राणित सर्वोदयवादी है. वे लोकतंत्र के पक्षपाती हैं. उनकी दृष्टि में विश्व की सर्वग्रासी समस्याओं का हल गांधी-दर्शन ही है. " [3]

---

1. गणेशजी, कवि का संस्मरणात्मक निबंध, सुधा, नवम्बर, 1931. पृ. 434 से 438- मैथिलीशरण गुप्त- व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक- पृ. 99 से उद्धृत.
2. कवि की हस्तलिखित कविता पुस्तक- मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य- कमलाकांत पाठक- पृ. 100
3. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य, कमलाकांत पाठक, पृ. 10

गुप्तजी ने गांधीजी की तरह आदर्श राज्य के लिए राम-राज्य की कल्पना की है. " अवध " में अहिंसक क्रांति को प्रधानता दी गई है. उनका कथन है कि मानवता घृणा की नहीं, प्रेम की वस्तु है, अतएव पापी का उपकार और पापों का प्रतिकार किया गया.

उनकी " भारत- भारती " भी राष्ट्रीय भावना से प्रभावित कृति है. बंगाल में तथा अन्यत्र सशस्त्र क्रांतिकारियों की ओर सारे देश की जनता देख रही थी. काश्मीर से कन्याकुमारी तक अनास्था फैल गई थी. शासकों ने उनको देशद्रोही माना लेकिन सही अर्थों में तो वे देशभक्त थे. अशिक्षित जनता ने उनकी बात को सही मानी. इसीलिए जब लार्ड हार्डिंज पर बम फेंका गया तब भारतीयों में सनसनी छा गई थी और जब वायसराय पर बम फेंका गया तब तो उनको ऐसा लगा कि मानो ब्रिटिश सत्ता पर ही बम फेंका गया हो. उस समय उग्रवादियों का एक दल क्रांति चाहता था और दूसरा दल लोकमान्य तिलक का था. तिलक जी ने सारे राष्ट्र को एक मंत्र दियाथा- " स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है. " ऐसे क्षणों में " भारत-भारती " [उद्बोधनात्मक काव्य] का प्रकाशन हुआ. गांधीवादी राजनीतिज्ञ चिरगाँव में गुप्तजी को मिलते थे. जिससे सरकार ने यह अनुमान लगाया कि था कि गुप्तजी भी सक्रिय राजनीतिज्ञ हैं. किंतु कवि ने राजनीति में सक्रिय भाग भी नहीं लिया फिर भी 1 अप्रैल 1941 को कवि, उनके अग्रज श्री राम-किशोर जी गुप्त और श्री निवासजी को गिरफ्तार किया गया. 10 जून को उनको झांसी से आगरा सेंट्रल जेल में भेजा गया. उस समय पुलिस का एक मात्र यही काम था. " देश में चारों ओर दिन रात, रात-दिन पुलिस का काम बस यही था कि पकड़ो, अंधाधुंध पकड़ो. मानो बहेलिये को ऐसी पकड़ने की ऋतु शायद फिर कभी भी जीवन में हाथ न लगे. जब जेल पहुँचे तो सारी जेल उन जैसे ही नागरिकों से भरी हुई थी. "[1]

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ - स्वतंत्र भूलयुग्म का निर्माण- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक " बरुआ ", पृ. 321.

गुप्तजी को गिरफ्तार करने का कारण यही था कि उन्होंने सभाओं में भाषण दिये हैं. उनको अजीब मौके पर और असाधारण ढंग से गिरफ्तार किया गया. सायंकाल हेड कांस्टेबल ने आकर उनको साथ चलने के लिए कहा. उनको कलेऊ करने से और चश्मा लेने से रोका गया. वे " भारत- रक्षा- कानून " के अधीन गिरफ्तार हुए थे.

गुप्तजी के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया. लेकिन दूसरी और यह भी सत्य है कि उन्होंने अपनी आयुभर सरस्वती की उपासना की और वह भी हिन्दी के माध्यम से. तब गुप्तजी के लिए राजनीति से अलग रहना संभव नहीं है, क्योंकि " सरकार समझती है कि हिन्दी में देश का जीवन स्पंदित है. सरकार देखती है कि हिन्दी में देश का जीवन वाणी पाता है. हिन्दी में भारत की आत्मा बोलती है और वह आत्मा अशांत है, जागरूक है, विद्रोही है. "[1] उनकी गिरफ्तारी के बारे में आगे लिखा गया - " गुप्तजी की गिरफ्तारी अगर हम हिन्दी भाषियों को इस तथ्य के प्रति जगा दे, समझा दे, कि हम देश की आत्मा की वाणी के रक्षक हैं, उस आत्मा में झिलमिलाती हुई विद्रोह सामर्थ्य के प्रहरी, तो वह गिरफ्तारी अन्याय और मूर्खता से भरी होकर भी धन्य है और यदि वह चेतना, हममें नहीं उत्पन्न होती, तब मैथिलीशरण गुप्त को अपने बीच स्वच्छन्द रखने के लिए अधिकारी नहीं है. उससे उनके प्रति किया गया अन्याय कम नहीं हो जाता, पर तब उसका विरोध करने का मुँह हमारा नहीं है. "[2]

जब गुप्तजी झांसी से आगरा जेल में जा रहे थे तब उन्होंने पगड़ी को

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ " कूलयुग्म का निर्माण- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक " बरुआ " पृ. 323
2. वही-पृ. 323

त्यागकर गांधी-टोपी पहन ली. जब वे आगरा जेल में गये तब उनकी सौ से अधिक राजनीतिक कार्यकर्ताओं से भेंट हुई. वहाँ आचार्य नरेन्द्रदेव, कृष्णदत्त जी, पालीवाल, केसकर, महेन्द्रजी आदि भी थे. वे जेल में सदैव कातते रहते थे. इसके साथ -2 उन्होंने " कारा " नामक एक कृति लिखी. लेकिन जब किसी अन्य ने " कारा " नाम से एक पुस्तक छपवा दी तब गुप्तजी ने अपनी कृति को " अजित " नाम से प्रकाशित करवाया.

जब गुप्तजी आगरा जेल में थे तब उनकी छप्पनवीं वर्षगांठ के अवसर पर समस्त बन्दियों की उपस्थिति में आचार्य नरेन्द्रदेव ने उनका अभिनन्दन पत्र पढ़ा. गांधी- जयंती पर चौबीस घंटे तक चर्खा कताई हुई और इसके बाद पूर्णाहुति के समय कई व्याख्यान हुए. गुप्तजी जेल में दो ही कार्य करते थे--कताई और पूजा. सन 1941 में गांधीजी के जन्मदिन 2 अक्टूबर को उपहार-रुप में तीन करोड़ गज सूत और बारह हजार रुपये अर्पण किये. इसी अवसर पर उन्होंने कहा कि " हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त को मैंने अपने पत्र में लिखा है कि आपने और आपके सहयोगियों ने जेल में जो सूत काता है उससे आप स्वराज्य को अधिकाधिक निकट लाने में समर्थ हुए हैं. " [1]

द्वितीय विश्वयुद्ध सन 1939 में शुरु हुआ. सन 1942 में " भारत छोड़ो " आंदोलन का आरंभ हुआ. कारा से मुक्ति पाने के बाद गुप्तजी ने पगड़ी का त्याग कर दिया और गांधी टोपी ही पहनने लगे. वे गांधी विचारधारा को महत्व देते थे. उन्होंने कारागृह में " जयभारत ", " अजित " और " कुणाल-गीत " की रचना की. इतना ही नहीं कवि का स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव से घनिष्ठ संबंध भी जेल में ही हुआ. महादेवीजी के अनुसार--
" वैष्णवता की जिस सजलता ने उनके मन से रोष का दाह धो डाला था,

---

1. कांग्रेस का इतिहास - पट्टाभिसीतारामैया. पृ. 314

उसी में अनेक निर्दोषों के बन्धन ने ज्वाला उत्पन्न कर दी. " [1]

गुप्तजी राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी, महामना मदनमोहन मालवीय, पंडित जवाहरलाल नेहरु, विनोबा भावे, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी आदि व्यक्तियों से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं. गुप्तजी ने अपनी राष्ट्रीय भावना के लिए गांधीजी को ही आराध्य माना है. जब गांधीजी अफ्रीका थे उस समय कवि ने वहाँ कई कविताएँ भेजी थी. गुप्तजी कृत " अनघ ", " साकेत ", " विश्ववेदना " और " अजित " में गांधी दर्शन की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है. " अंजलि और अर्घ्य " उनकी मृत्यु के पश्चात लिखी गई शोक-गीत है. " मैथिली काव्य मान-ग्रंथ के लिए उन्होंने लिखा था -" कवि मैथिलीशरण को मैं अच्छी तरह जानता हूँ. वे भी मुझे भली भाँति जानते हैं. " [2] " साकेत " पर कवि और गांधीजी का पत्र-व्यवहार भी हुआ है. गुप्तजी मानते हैं कि नेहरु जी राष्ट्र निर्माण के कार्यों के समर्थक ही नहीं, लेकिन प्रशंसक भी है. कवि की " भूमि-भाग " विनोबाजी से प्रभावित होकर लिखी गई कृति है. स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी गांधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह में मानते थे और वे क्रांतिकारियों को सत्याग्रही बनाने के पक्ष में थे. गुप्त जी ने " अजित " की रचना में इस दृष्टिकोण को रखा है. गणेश जी देशी राज्यों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ रेखाएँ - श्रीमती महादेवी वर्मा. पृ. 91
2. मैथिली काव्यमान ग्रन्थ की कलाभवन काशी में संग्रहीत हस्तलिखित सामग्री से - मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य - कमलाकांत पाठक - पृ. 48 से उद्धृत.

करना चाहते थे. कवि ने " राजा और प्रजा " में इस दृष्टि को प्रधानता दी है. इसके अतिरिक्त कवि का डॉ० भगवानदास, स्व० शिवप्रसाद जी, श्री प्रकाश जी, स्व० रामनारायण जी मिश्र, कृष्णकान्त जी, राजर्षि टंडन, स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि, मिनिस्टर केसकर आदि से भी सम्बन्ध रहा है.

सामाजिक

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी. वर्णाश्रम-धर्म और जाति व्यवस्था अपने विकृत रुप में प्रसिद्ध थी. बाल- विवाह, वृद्ध विवाह, सती- प्रथा, पर्दा प्रथा आदि समाज में प्रचलित थे. हिन्दू समाज अन्ध विश्वासों, व्रतों- त्यौहारों और देवी देवताओं की पूजा को महत्व देता था. उस समय बाहयाचार को ज्यादा महत्व दिया जाता था. हिन्दू प्रजा तीर्थ यात्रा, पण्डों और पुरोहितों को दान पुण्य करती थी. भारतीयों में धार्मिक वैमनस्य नहीं था. सर टॉमस रो ने लिखा था कि यहाँ सौ से अधिक जातियाँ और धर्म हैं, पर वे अपने सिद्धान्तों और पूजा- विधि पर झगड़ते नहीं. हर एकको अपने ढ़ंग से अपने ईश्वर की आराधना करने की पूरी छूट है. धर्म के कारण सताया जाना यहाँ अज्ञात है. अंग्रेजों के आगमन से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार और प्रचार हुआ जिससे भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया. सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करने वाले राजा राममोहनराय है. उन्होंने सती-प्रथा, गोरे और काले के भेद भाव का विरोध किया. इनके विरोध में उन्होंने आन्दोलन किया. बंगाल की कुलीन-प्रथा के विरुद्ध भी उन्होंने आंदोलन किया. देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा कि विवाह के समय कन्या की आयु अठारह वर्ष

39

की होनी चाहिए. स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को महत्व दिया. उन्होंने भी विधवा- विवाह, बाल- विवाह और अस्पृश्यता का विरोध किया. महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानडे, नारायण चन्द्रवरकर और रामबाई सरस्वती ने आंदोलन किया. दक्षिण में आंदोलन का संचालन रघुनाथ राव, वीरेसलिंगराम और " इण्डियन सोशल रिफार्मर " के सम्पादक नटराजन ने किया. इन सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों ने राष्ट्रीय रुप ले लिया. रामकृष्ण, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एवं विवेकानन्द आध्यात्मिक संदेश के प्रचारक हैं. सन 1857 के विद्रोह के पश्चात अलीगढ़ में कालेज की स्थापना की गई. सन 1899 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ. जिसमें तीन सौ मुसलमान थे. हिन्दू मिलों, खानों और दफ्तरों में कार्य करने लगे. सरकार की नीति सभी धर्मों के लिए समान थी. सभी वर्ण समान थे, अधमवर्ण और सवर्ण दोनों ही समान थे. अर्थात उस समय अछूतों का उद्धार किया गया. शिक्षित समुदाय की वृद्धि होने लगी जिससे रुढ़ियों और परम्पराओं का भी विरोध हुआ. शास्त्र मर्यादा में लोगों का विश्वास नहीं रहा. " आप्तवाक्य और शास्त्र मर्यादा में श्रद्धा कम हो चली थी और गतानुगतिकता का विरोध गांधी, रवीन्द्र, आर्यसमाज, ब्रह्म समाज सभी ने एक स्वर से किया था. समाज का नवजागरण हुआ था, हीन भावना दूर होने लगी थी और आत्म गौरव की विस्मृति हट चुकी थी. " [1] उन्नीसवीं शती के अन्त में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, लाहौर और इलाहाबाद में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई.

केशव कर्वे और गोपालकृष्ण देवधर ने नारी सुधार और नारी शिक्षा को महत्व दिया. सन 1893 में कर्वे ने एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह किया.

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - कृष्णबिहारी मिश्र, पृ. 80

और उसी वर्ष विधवा पुनर्विवाह संघ का सभापतित्व भी किया. उन्होंने सन 1899 में हिन्दू विधवा- सदन की और सन 1916 में " इंडियन वीमेन्स युनिवर्सिटी की स्थापना की. देवधर ने सन 1909 में " पूना-सेवा-सदन " की स्थापना की. सन 1924 तक इसकी सभानेत्री रामबाई रानडे रही. रानडे ने सन 1890 में कहा कि 12 वर्ष की लड़कियों का विवाह करना चाहिए अर्थात पहले कन्या की आयु 10 वर्ष की थी. उसको बढाकर 12 साल की गई. आर्य समाज ने पर्दा-प्रथा, बाल विवाह आदि का विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन. मुसलमानों द्वारा अपकृत नारियों को पुन: " शुद्ध " कर हिन्दू धर्म में ग्रहीत कर लेने का विधान भी स्वामी दयानंद ने प्रस्तुत किया. सन 1906 में बम्बई सरकार ने एक विधान बनाया, जिसके द्वारा देवताओं के लिए स्त्रियों के समर्पण में योग देनेवाले पुजारी दंड के योग्य माने गये. सन 1909 में मैसूर सरकार ने मंदिरों में नृत्य बंद करा दिये. सन 1917 में " वीमेंस इंडियन असोसिएशन " की स्थापना की गई. श्रीमती एनी बेसेन्ट इसकी सभापति थी. रामबाई रानडे, सरलादेवी चौधरानी और सरोजिनी नायडू ने राजनीतिक अधिकारों की भी माँग की. अंग्रेज सरकार का ध्यान नारियों की दुर्दशा की ओर गया. उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा को महत्व दिया. मई 1849 में कन्या पाठशाला की स्थापना की गई. पुरुषों ने भी नारी आंदोलन का समर्थन किया. लाला लाजपतराय का कथन है कि " स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है. क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है. चाहे भूतकाल हो या भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों पर निर्भर है. उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते, जो कि गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई है. " 1

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना- शैलकुमारी- पृ. 41

ब्रिटिश सरकार की इच्छा भारत में राज्य स्थापना की थी. भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद उन्होंने मुसलमानों के साथ शत्रु-सा व्यवहार किया. मुसलमानों को नौकरियाँ भी नहीं दी जाती थीं. उस समय मुस्लिम प्रजा शिक्षा से भी वंचित रहती थी क्योंकि अरबी- फारसी की शिक्षा के लिए कोई सुविधा नहीं थी. लेकिन सन् 1857 के बाद सरकार की नीति बदली. सरकार ने मुसलमानों के प्रति सहानुभूति दिखलाई. सन् 1912-13 में शिक्षित मुसलमान कांग्रेस के निकट आये. उन्होंने भ्रातृभावना को भी बल दिया. सन् 1916 में कांग्रेस लीग पैक्ट की स्थापना की गई.

संक्षेप में इस युग की सामाजिक दशा का सिंहावलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज अपनी दुर्बलताओं की ओर से सचेत हो गया था. जाति प्रथा के विरोध में आंदोलन प्रारंभ हो गया था. अस्पृश्यता निवारण और हरिजन आंदोलन की नींव पड़ चुकी थी तथा नारियों के प्रति होनेवाले अत्याचारों के विरोध के स्वर भी सुनाई पड़ने लगे थे. शिक्षा प्रसार और प्राचीन भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा की गई. जिससे आत्महीनता की भावना को दूर करने में सहायता मिली. जाति- पांति तोड़क नामक मंडल की स्थापना की गई. " सन् 1937 में आर्य विवाह कानून द्वारा आर्य समाजियों के अन्तर्जातीय विवाहों को वैध बना दिया गया. " [1] अछूत प्रजा ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुई. सन् 1920 में गांधीजी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम किये. उनके लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई. सन् 1932 में अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था कर जब विदेशी शासकों ने हिन्दू समाज को दो विरोधी कैम्पों में बांट देना चाहा तो गांधीजी के अनशन के द्वारा ही वह कुचक्र विफल किया जा सका. इसी समय उन्होंने अछूतों को " हरिजन " नाम दिया और उनकी दशा सुधारने

---

1. भारत का सांस्कृतिक इतिहास- श्री शिवशेखर मिश्र- पृ. 276

42

के लिए " हरिजन सेवक संघ " की स्थापना की. तथा " हरिजन " पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया. " [1] हरिजनों को धारासभा में स्थान दिया गया. सन 1919-20 में साम्प्रदायिक दंगों के कारण हिन्दू - मुस्लिम दोनों जातियों के बीच वैमनस्य का वातावरण पैदा हुआ. असहयोग के पहले दोनों जातियों के बीच भीषण दंगे हुए लेकिन इस आन्दोलन के बाद दोनों के बीच पुनः मैत्री की भावना पैदा हुई. सन 1923 में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ. जिसमें गांधीजी की तुलना ईसा मसीह से की गई. लेकिन सन 1924 में मौलाना मुहम्मद अली ने कहा कि " मिस्टर गांधी का चरित्र चाहे शुद्ध क्यों न हो, परन्तु धार्मिक दृष्टि से मैं व्यभिचारी और पतित मुसलमान को मिस्टर गांधी से अच्छा समझता हूँ. " [2] इस वैमनस्य का कारण अंग्रेजों की " फूट डालो और राज्य करो " की नीति थी. सन 1920 के असहयोग आन्दोलन में अनेक नारियों ने भाग लिया. गांधीजी ने उनको शराब, अफीम और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देने के लिए कहा था. बादमें, कांग्रेस कार्य समिति ने भारतीय महिलाओं को बधाई देते हुए कहा कि समिति भारतीय महिलाओं को इस बात की बधाई देती है और उनकी प्रशंसा करती है कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में दिन दूने रात चौगुने उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही हैं. सन 1930 में " शारदा-एक्ट " या " बाल विवाह निरोधक कानून " ने नारियों के लिए अनेक प्रशंसात्मक कार्य किये. पर्दा- प्रथा, अशिक्षा आदि को दूर किया गया. सन 1916 में पं० मदनमोहन मालवीय ने बनारस में सेंट्रल हिन्दू कालिज की स्थापना की. सन 1920 में अलीगढ़ में मुस्लिम कालिज की स्थापना की गई. सन 1928 में हैदराबाद में इस्मानिया विश्वविद्यालय की स्थापना की गई. जिसमें साहित्य के सिवा अन्य विषय उर्दू के माध्यम से पढ़ाये जाते थे.

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्णबिहारी मिश्र- पृ. 165
2. भारतीय राजनीति- श्री रामगोपाल- पृ. 319

43

गांधीजी का असहयोग आन्दोलन शुरु हुआ. इसके द्वारा सरकारी स्कूलों और कालिजों का बहिष्कार किया गया. " अतः अनेक नये राष्ट्रीय विद्यालय इस काल में खोले गये. तिलक स्कूल ऑफ पालिटिक्स लाहौर, नेशनल कालेज लाहौर, जामियामिलिया इस्लामिया दिल्ली, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, काशी विद्यापीठ काशी, बिहार विद्यापीठ पटना, महिला विद्यापीठ प्रयाग, हिन्दी साहित्य आगरा जैसी अनेक संस्थायें खुलीं. "[1]

श्री निवास रामानुजन ‖1918‖, श्री जगदीशचन्द्र बोस ‖1920‖, श्री चन्द्रशेखर वेंकट रमण ‖1930‖, श्री मेघनाद साही ‖1931‖ आदि वैज्ञानिक रायल सोसायटी के सदस्य थे. उर्दू में इकबाल, बंगला में शरत और रवीन्द्र, मराठी में तिलक, काशीनाथ राजवाडे, हरनारायण आप्टे, गुजराती में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, महात्मा गांधी, महादेव देसाई, तामिल में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, तेलगू में चिन्तय सूरि और उड़िया में राघनाथ राय जैसे साहित्यकारों ने राष्ट्रीय भावनाओं को महत्व दिया. नन्दलाल बसु ललित कलाओं में प्रसिद्ध थे. उदयशंकर ने भारतीय शास्त्रीय नृत्यकला को पुनरुज्जीवन दिया. मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, एनी बिसेण्ट, पं० मदनमोहन मालवीय, बी. जी. हार्निमेन, सी. वाई. चिन्तामणि और फिरोजशाह मेहता आदि उस समय के राष्ट्रीय पत्रकार थे. गणेशशंकर विद्यार्थी , पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर आदि हिन्दी के पत्रकार थे. इस प्रकार मराठी, गुजराती, बंगला, उर्दू आदि में पत्रिकाएँ निकलीं. सरकार ने इन पत्रों का कई दमन किया. सन 1914 में योरोपीय महायुद्ध शुरु हुआ तब पत्रों पर सेंसर लगाया गया. " 1919 से सत्याग्रह और असहयोग की खबरों का प्रकाशन पूर्णतया रोक दिया गया और

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - कृष्णबिहारी मिश्र- पृ. 167

1930-32 में प्रेस आर्डीनेन्स के द्वारा उन्हें कुचलने की चेष्टा की गई. इस बीच में न जाने कितने पत्रों से जमानत मांगी गई, उन पर पुलिस के धावे हुए, उनकी प्रतियाँ जब्त कर ली गई और उनके सम्पादकों को जेल में डाल दिया गया. " [1]

गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन से भारतीय जनता नैतिक दृष्टि से ऊपर उठी. इस युग में गांधीजी का काफी प्रभाव पड़ा जिससे इस युग को " गांधी- युग " भी कहा गया. सन् 1929 में सरोजिनी नायडू गिरफ्तार हुई जिससे भारतीय नारियों को प्रेरणा मिली. सन् 1929 से 1932 तक अनेक स्त्रियों को दण्ड दिये गए. उन्होंने कठोर सजायें, लाठीचार्ज, सम्पत्ति-हानि और सम्मान हानि का मुकाबला किया. उन्होंने शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरने किये. उस समय उनको कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा. रुढ़ियों, मिथ्या पवित्रता, छूआछूत, भेदभाव आदि को नष्ट कर दिया. इस संघर्ष से उनको स्वाधीनता मिली जिसकी वे अपेक्षा रखती थी. स्त्रियों को समानता मिली. उनको भी पुरुषों के समान मान, पद आदि मिला. सन् 1935 से स्त्रियों को मतदान का अधिकार भी दिया गया. सन् 1937 तक अस्सी से भी अधिक स्त्रियाँ निर्वाचित की गई. उस समय भारतीय महिलाओं का स्थान विश्व में तीसरा था.

स्वायत्त-शासन के साथ- साथ शिक्षा-क्षेत्र में जागृति आई. साक्षरता आंदोलन, प्रौढ शिक्षा आन्दोलन, अछूतों तथा स्त्रियों को शिक्षा देने का कार्य भी हुआ. गांधीजी ने बेसिक शिक्षा को महत्व दिया. इससे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में नवीनता आई. सन् 1944 में " केन्द्रिय सलाहकार समिति " ने " सार्जेन्ट शिक्षा योजना " के नाम से युद्धोत्तर

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्णबिहारी मिश्र- पृ. 168

45

शिक्षा विकास योजना बनाई. सन 1945 के बाद केन्द्रीय शिक्षा विभाग पृथक हो गया और इसका उत्तरदायित्व वाइसराय की कार्यकारिणी के एक सदस्य को सौंपा गया. सन 1946 में विश्वविद्यालय अनुदान समिति " की स्थापना हुई. सन 1947 से शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति हुई. सन 1947 में भारत में इक्कीस विश्वविद्यालय थे, लेकिन 1955 तक बत्तीस विश्वविद्यालय हो गए. स्वतंत्रता के बाद स्कूलों में भी वृद्धि हुई. उस समय टेक्नीकल शिक्षा देने वाली संस्थायें भी खोली गई. नारियों की शिक्षा के लिए भी सरकार ने प्रबन्ध किया. विधवाओं को छात्रवृत्तियाँ देने का प्रस्ताव रखा गया. सन 1932 में दिल्ली में लेडी इरविन कॉलेज की स्थापना हुई. सहशिक्षा को महत्व दिया गया. भारतीय स्त्रियों ने विदेशों में भी भ्रमण किया. श्रीमती सरोजिनी नायडू ने यूरोप और अमरिका का प्रवास किया. श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित को अमरिका तथा रूस में भारतीय राजदूत का पद दिया गया. इस काल में अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन को भी बल दिया गया. अछूतों और सवर्णों को समान अधिकार दिये गये. हमारे आलोच्य कवि का समस्त काव्य एवं जीवन युगीन परिस्थितियों का परिष्कार करता हुआ मानव के जीवन को एक नवीन प्रगति- पथ पर अग्रसर करता है. ऊँच नीच, छुआछूत आदि संकीर्ण मनोवृत्तियों से ऊपर उठकर समानता, स्वतंत्रता एवं विश्वमानवता के महान आदर्श समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है.

सांस्कृतिक

किसी भी परतंत्र देश में जब तक प्रगतिशील शक्तियाँ नहीं आती तब तक उस देश में नवीन चेतना का संचार नहीं होता है. भारत में ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में नवीन चेतना का संचार हुआ. जिसके फलस्वरुप आज भारत विकसित

46

राष्ट्रों के समकक्ष होने के लिए प्रयत्न कर रहा है. उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय और यूरोपीय संस्कृतियों का संगम हुआ और दोनों राष्ट्रों ने एक दूसरे को पहिचाना, बीसवीं शताब्दी के जीवन और साहित्य पर इस चेतना का प्रभाव दिखाई पड़ता है.

बीसवीं शताब्दी में जो नवजागरण हुआ उसका श्रेय अंग्रेज शासकों को है. अंग्रेजों के संपर्क में आने से ही भारत वर्ष में नवीन संस्कृति आई है. अंग्रेजों की उदारता के कारण भारतीय विद्यार्थियों को आंग्ल विचार और साहित्य का ज्ञान मिल पाया. पश्चिमी और पूर्वी अंचलों से भारत में नई परंपरा का आविर्भाव हुआ जिसने युग- परिवर्तन की शक्तियाँ दीं. अंग्रेज शासकों ने क्लर्कों के उत्पादन के लिए अपनी शिक्षा का प्रचार किया. जिससे भारतीयों में भी नवीन विचार और भाव पैदा हुए. अंग्रेजों के आगमन के बाद भारतीयों में नवीन चेतना का आविर्भाव हुआ. भारत में रेल, डाक, तार आदि साधन भी आये. उन्होंने भारत में अपना राज्य स्थापित कर दिया.

जवाहरलाल नेहरु ने लिखा है कि " अंग्रेज भारत में प्रभुतावान होकर विश्व की अग्रगण्य शक्ति ही इसलिए बन सके कि वे नवीन वृहद्‌यंत्रमूलक औद्योगिक सभ्यता के अग्रदूत थे. वे उस नवीन ऐतिहासिक शक्ति के प्रतिनिधि थे जो विश्व में रुपान्तर लानेवाली थी और इस प्रकार वे अपने आप से अज्ञात रुप में परिवर्तन और क्रान्ति के अग्रदूत और प्रतिनिधि हो गये. " 1

अंग्रेजों के आगमन से भारत में अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी शिक्षा आयी. भारत अंग्रेजी संस्कृति से परिचित हुआ. भारतीय प्रजा में नवीन भावों और विचारों का संचार हुआ. वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और प्रान्त की संकीर्णता से भारत ऊपर उठा और भारत में सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय चेतना का

---

1. Discovery of India - Pt. Nehru - P-330

47

आविर्भाव हुआ. चेतना की इस लहर ने सभी पाश्वों और सभी स्तरों को छुआ. जिससे भारतीयों में नवीन जीवन का संचार हुआ. नवचेतना से निद्रा-मग्न भारतीय समाज को एक नवीन दृष्टि मिली. " शताब्दियों से अतीत को आँखों में मूँदे हुए निद्रामग्न भारतीय समाज मे एक जागरण, एक उत्थान दिखाई दिया और उसे अपने अतीत के निरीक्षण की दृष्टि मिली. पुरातन श्रद्धा और आस्था के स्थान पर तर्क और विवेक प्रतिष्ठित हुए, अन्धविश्वास और जड़ रुढ़ियों पर बुद्धि और विज्ञान ने विजय पाई, स्थिरता और गतानुगति ने गति और प्रगति को आत्मसमर्पण किया एवं दासता और बन्धन में स्वतंत्रता और मुक्ति की भावना का अभिनन्दन हुआ. " [1]

" जब यूरोप भारत पहुँचा, उस समय यहाँ के लोग जीवन की सत्यता में प्रबलता से विश्वास करना छोड़ चुके थे. जीवन असत्य है, जीवन क्षणभंगुर है एवं मनुष्य का सबसे बड़ा काम अपने परलोक की चिंता करना है, इस निवृत्तिवादी दर्शन का बीज पहले- पहल उपनिषदों में दिखायी पड़ा था. किन्तु जैन और बौद्ध मतों के दर्शन में यह बीज बढ़कर विशाल वृक्ष हो गया और कालक्रम में इस देश की जनता लोक को परलोक के सामने हीन मानने लगी. " [2] ऐसे अंधकार के समय में प्रकाश फैलनेवाले स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द हैं. विवेकानन्द ने यही बतलाया कि वेदान्त जीवन से भागने की प्रेरणा नहीं देता है बल्कि वह तो जीवन की कठिनाइयों को झेलने की शक्ति देता है. केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, एनी बीसेंट, अरविन्द, रानडे और गांधीजी ने उसी प्रकार की व्याख्यायें की हैं. किन्तु इस दिशा में हिन्दुत्व को माँजकर चमका देने का सबसे बड़ा कार्य लोकमान्य

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर- डा० सुधीन्द्र- पृ. 5
2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ- " भारतीय पुनरुत्थान के कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त - रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 97।

48

तिलक ने किया, जिनका ग्रंथ " गीता रहस्य " अथवा " कर्मयोग शास्त्र " अभिनव हिन्दुत्व का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ है. " [1]

भारत में पुनरुत्थान या " रेनेसां " का आन्दोलन सबसे पहले बंगाल में उठा. बादमें, अन्य प्रान्तों में भी अंगरेजी शिक्षा का प्रचार हुआ ब और वहाँ भी पुनरुत्थान का आंदोलन चला. बंगाल में पुनरुत्थान के नेता राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द है जबकि इस आंदोलन के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं.

प्रत्येक महाकवि अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है. अतः कवि की कृतियाँ पर युग- विशेष का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से पड़ता है. " इसीलिए महाकवि युग- विशेष का वरदान होता है. और इसी कारण साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है. " [2] गुप्तजी भी अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर राम-कथा को छोडकर युगविशेष के गीत गाने लगे.

भारतीय अंग्रेजों के वैभव या बाहरी चमक से आकर्षित नहीं हुए. उन्होंने मनुष्य के शील को महत्व दिया है, बाहरी चमक को नहीं. भारतीय प्रजा उनके वैभव में कभी भी फँसी नहीं. इससे यही हुआ कि - " आधि-भौतिकता की टकराहट से भारत की ऊँघती हुई बूढ़ी सभ्यता की नींद खुल गयी और वह इस भाव में अपने घर के सामनों पर नजर दौड़ाने लगी कि जो चीज़े लेकर यूरोप भारत आया है, वे हमारे घर में हैं या नहीं, भारतीय

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ- " भारतीय पुनरुत्थान के कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त- रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 97।
2. साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन - डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना- पृ. 33

49

सभ्यता का यही जागरण भारत का नवोत्थान था. "[1] जिस नवोत्थान का आरंभ राममोहनराय, दयानन्द और विवेकानन्द ने किया था, और जिसकी धारा में हम आज भी तैरते हुए आगे जा रहे हैं, वेदान्त उस आन्दोलन की रीढ है. "[2]

" भारतीय नवोत्थान की धारा के क्रम में छोटे-बड़े अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं. यह धारा अब भी प्रवाह में है और आज भी ऐसे व्यक्तियों का आविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है. किन्तु, इन सारे व्यक्तित्वों के आध्यात्मिक पिता राममोहनराय हैं. "[3]

ब्रह्म समाज

" भारत में ईसाइयत का प्रचार, ईसाइयों के द्वारा भारतीय धर्मों की निन्दा, यूरोप के क्रांतिकारी बुद्धिवादी विचार और अंगरेजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं द्वारा हिन्दुत्व की भर्त्सना, ये कुछ कारण थे जिनसे हिन्दुत्व की नींद टूटी. उसकी पहली अँगड़ाई ब्रह्म समाज में प्रकट हुई और उसके नवोत्थान के आदि पुरुष राजा राममोहनराय हुए. "[4]

---

1. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - पृ. 444
2. वही- पृ. 445.
3. वही- पृ. 442.
4. वही- पृ. 447.

राममोहनराय " नई स्फूर्ति के, उस अन्वेषण की लालसा के, उसकी ज्ञान-विज्ञान की पिपासा के, उसकी विशाल मानव- सहानुभूति के उसके शुद्ध और परिष्कृत नीतिशास्त्र के और अतीत के प्रति श्रद्धापूर्ण किन्तु समालोचक आदर भाव के मूर्त रुप है थे. " 1

राजा राममोहनराय का जन्म 22 मई सन 1772 ई0 में बर्दवान जिले के राधानगर गाँव में हुआ था. वे अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दू और ग्रीक भाषाओं के ज्ञाता थे. वे मूर्ति- पूजा के विरोधी थे. उन्होंने मूर्ति पूजा के खण्डन पर एक पुस्तक लिखी थी. जिसको देखकर उनके पिता उदासीन हो गए. उस समय उन्होंने गृहत्याग किया.

वे मानते थे कि भारतवासियों को अंग्रेजी पढ़नी चाहिए. जिससे भारतीय भी यूरोप के विज्ञान से परिचित हो सके. वे मानते थे कि नवीनयुग में भारतवासियों को विज्ञान और वेद उपनिषद दोनों की जरुरत हैं. अर्थात वे प्राचीन और नवीन संस्कृति में समन्वय चाहते थे . " इतिहास में राम- मोहनराय का स्थान उस महासेतु के समान है जिस पर चढकर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है. प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवतावाद के बीच जो खाई है, अन्धविश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है, स्वेच्छाचारी राज्य और जनतंत्र के बीच जो अन्तराल है तथा बहुदेववाद एवं शुद्ध ईश्ववाद के बीच जो भेद है, उन सारी खाइयों पर पुल बाँधकर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर भेजनेवाले महापुरूष राममोहन- राय है. " 2

वे हिन्दुओं को एक नये धर्म के मंतव्यों से परिचित करना चाहते थे.

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - डा0 सुधीन्द्र- पृ. 12
2. संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 451.

इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए उन्होंने सन् 1815 ई० में आत्मीय सभा की स्थापना की. सन् 1819 ई० में यह सभा बंद हो गई. तब उन्होंने यूनिटेरियन सोसायटी नामक एक न सभा की स्थापना की. इस पाश्चात्य सभा के कार्य से भी उनको संतोष नहीं हुआ. बादमें, हिन्दू धर्म में सुधारलाने के लिए यह समिति अयोग्य सिद्ध हुई. तब उन्होंने 20 अगस्त सन् 1828 ई० में कलकत्ते में " ब्रह्म समाज " की स्थापना की. इस सभा की स्थापना औपनिषदिक तत्वों के आधार पर हुई थी. " इस सभा ने मूर्ति पूजा का बहिष्कार किया, अवतारों को नहीं माना और लोगों का ध्यान उस निराकार, निर्विकार, एक ब्रह्म की ओर आकृष्ट किया, जिसका निरुपण वेदान्त में हुआ है. " [1] ब्रह्म समाज सभी धर्मों के प्रति सहानुभूतिशील और उदार है. " ब्रह्म समाज के अधिवेशनों में वेद के मंत्रों का उच्चार, उपनिषदों के बंगला अनुवाद का वाचन और बंगला में उपदेश दिये जाते थे. ब्रह्म समाज में इस बात को प्रमुखता प्रदान की गई कि मंदिर, मस्जिद, गिरजा सब में ब्रह्म स्थित है. वेद, कुरान, इंजील आदि सभी धर्म-ग्रंथों को समान सम्मान दिया गया और विश्व के सभी धर्म शिक्षकों को सम्मान की दृष्टि से देखा गया. " [2]

ब्रह्म-समाज की स्थापना के बाद वे 27 सितम्बर, 1833 ई० को ब्रिस्टल गये जहाँ उनका देहावसान हो गया. राममोहनराय के अनुयायी महर्षि देवेन्द्र-नाथ ठाकुर के समय में ब्रह्म समाज हिन्दुत्व से अलग हो गया और ईसाइयत के समीप जाने लगा. उन्होंने " तत्वबोधिनी " नामक एक सभा की स्थापना की. जिसके द्वारा उन्होंने अपने सिद्धान्तों और उद्देश्यों का प्रचार किया. बादमें, सन् 1842 ई० में उन्होंने " तत्व-बोधिनी " सभा को ब्रह्मसमाज में मिला दी. इसके बाद देवेन्द्रनाथ के अनुयायी भी इस सभा में सम्मिलित हो गए. " तत्व-बोधिनी पत्रिका में यह स्पष्ट रुप से कहा गया है कि वेद अपौरुषेय हैं और

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 452.
2. पंत का काव्य - डा० प्रेमलता बाफना- पृ. 67.

52

ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों के मूलाधार वेद ही हैं. " [1]

सन् 1857 ई० में केशवचन्द्र सेन ने इस सभा का नेतृत्व संभाला. वे तेजस्वी एवं मेधावी व्यक्ति थे. उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया. सन् 1865 ई० तक ब्रह्मसमाज की चौवन शाखाएँ देशभर में खुल गई थी. इसका श्रेय भी केशवचन्द्र सेन को है. उन्होंने ब्रह्म समाज में भक्ति और वैष्णवों की संकीर्तन- प्रणाली दोनों को महत्व दिया. इसके साथ साथ उन्होंने सभी धर्मों की उपासना को महत्व दिया. जिसके फलस्वरुप ब्रह्म-समाज के प्रार्थना संग्रह में हिन्दू, बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुसलमान और सभी चीनी धर्मों की प्राथनाएँ हैं. इससे स्पष्ट है कि राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र सेन आदि द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में नवीन चेतना का संचार हुआ. इस समाज ने पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह एवं सती-प्रथा का विरोध किया और विधवा विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह को महत्व दिया. " वास्तव में ब्रह्म समाज भारतीयों की राष्ट्रीय जागृति का प्रथम सुसम्बद्ध चरण था. इसने भारतीयों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, पारस्परिक दायित्व एवं मिलकर काम करने की भावनाओं का संचार किया. " [2]

प्रार्थना-समाज =-

प्रार्थना- समाज के संस्थापक महादेवगोविन्द रानडे का जन्म सन् 1842 ई० में नासिक जिले में हुआ था. रानडे और राजाराममोहन राय बौद्धिक ऊँचाई में समान थे. चितपावन ब्राह्मण रानडे ने साहित्य,राजनीति

1. An Advance History of India. - R.C. Majumdar - P. 878.
2. Social Background of Indian-Nationalism - A.R.D. - P. 285

53

और अर्थशास्त्र में विद्वता प्राप्त की थी. उन्होंने सरकारी नौकरी की थी और वे हाईकोर्ट के जज भी रहे थे. गोपालकृष्ण गोखले ने लिखा है कि - " रानड़े ने प्रायः तीस वर्ष तक भारतवर्ष के ऊँचे से ऊँचे विचारों तथा ऊँची से ऊँची आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया था. प्रोफेसर कर्वे ने लिखा है कि कोई बाईस साल तक पूने का सारा इतिहास रानड़े के कृत्यों का ही इतिहास था. स्व. सी. एफ. ऐन्ड्रूज लिखते हैं कि - " अनेक दृष्टियों से भारतवर्ष के नये सुधार आन्दोलन का आविर्भाव बम्बई क्षेत्र में हुआ और उसका अत्यन्त निकट का संयुक्त रानडे के नाम के साथ रहा है. "[1]

समाज- सुधारक रानडे मानते थे कि सुधार का लक्ष्य मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए. वे मानते थे कि राजनीतिक अधिकारों का उचित प्रयोग करना चाहिए. वे यह भी मानते थे कि कमजोर सामाजिक व्यवस्था द्वारा सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था का निर्माण नहीं हो सकता. धार्मिक दृष्टि से उनके आदर्श उच्च रहे हैं. वे यही कहते थे कि हमें सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में तब सफलता मिलेगी, जब हमारी धार्मिक भावनायें उच्च होगी. उनका यह मत था कि समाज सुधारक के लिए यह उचित है कि वह अतीत को पृष्ठभूमि मानकर वर्तमान में कार्य करें. आगे वे लिखते हैं कि- " सच्चे सुधारक का कार्य कोरी स्लेट पर लिखना न होकर अर्धलिखित वाक्य को पूर्ण करना होता है. "[2]

" रानड़े ने प्रार्थना समाज द्वारा एक ब्रह्म की उपासना और प्राचीन धार्मिक मूल्यों तथा आदर्शों को आधुनिक युग के मूल्यों की भूमिका में अपनाने का महान संदेश अपने देशवासियों को दिया. "[3] इस समाज ने सहयोग,

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 457
2. Advanced History of India- R. C. Majumdar- P. 882
3. पंत का काव्य- डा० प्रेमलता बाफना- पृ. 70

54

अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा को अधिक महत्व दिया. प्रार्थना समाज ने मूर्तिपूजा अथवा परम्परागत धार्मिक अनुष्ठानों का परित्याग नहीं किया था. इस समाज ने पारस्परिक सौहार्द्र, सेवा- भावना, सामाजिक एकता, आस्तिकता आदि का अत्यधिक प्रचार किया. बंगाल की नवोत्थान प्रेरणा महाराष्ट्र में आकर अधिक सामाजिक हो गई, किन्तु सुधारकों की वैयक्तिक सीमाओं और परिस्थिति की प्रतिकूलता ने उसे पूर्ण नहीं होने दिया. फिरभी यह मानना पड़ेगा कि जिस भारतीय और हिन्दू राष्ट्रीयता का जयघोष तिलक ने आगे चलकर किया उसका सांस्कृतिक धरातल रानडे ने पहले ही स्थापित कर दिया था.

आर्य समाज :-

कुछ अर्थों में ब्रह्म समाज से भी अधिक व्यापक धर्म- सांस्कृतिक जागरण लाने का श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा प्रवर्तित " आर्य समाज " को है. इस शताब्दी में होने वाले उत्तरापथ के सामाजिक सांस्कृतिक पुनरु- -त्थान की भूमिका " आर्य समाज " ने ही प्रस्तुत की.[1] केशवचन्द्र और रानडे की तुलना में दयानन्द वैसे ही दीखते हैं जैसे गोखले की तुलना में तिलक. जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामग्रिक तेज पहले पहल तिलक में प्रत्यक्ष हुआ, वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द में निखरा. "[2] ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज के नेता अपनी हीनता का तथा विदेशियों की श्रेष्ठता का अनुभव कर रहे थे. उनमें आत्मा- भिमान का अभाव था. उन्होंने कहा कि हिन्दुओं का सच्चा धर्म वैदिक धर्म है उसकी राह पर चलने से ही उनको विजय मिलेगी. उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्मों के दोष दिखलाए. जिससे हिन्दू जनता को पता चला कि ईसाइयत और

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर- डा० सुधीन्द्र- पृ. 14
2. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 463

इस्लाम धर्म हिन्दू धर्म से श्रेष्ठ नहीं है. बादमें, हिन्दुओं का ध्यान अपने मूल धर्म की ओर गया. अतः हिन्दू प्रजा अपनी परंपराओं से परिचित हुई और उनमें अनुराग और स्वाभिमान के भाव पैदा हुए. वे मानते थे कि वेद ही सभी विद्याओं का मूल है. जिससे भारतीयों में राष्ट्रीय भावना पैदा हुई. उनको पता चला कि हिन्दू धर्म, ईस्लाम या तो ईसाइयत से भिन्न नहीं है. पर उसमें सभी धर्मों से अधिक शक्ति भी है. हिन्दू धर्म से ही सभी धर्म और वैदिक संस्कृति से ही विश्व की संस्कृति पैदा हुई है. अहिन्दू भी हिन्दू धर्म को अपना सकता है, स्वामी दयानंद ने राममोहनराय , केशवचन्द्र सेन, रानडे के विरुद्ध जाकर यह कहा कि धर्मच्युत हिन्दू फिरसे अपने धर्म में आ सकता है. " यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, अपितु, यह जागृत हिन्दुत्व का समर- - नाद था. और सत्य ही, रणारूढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं हुआ. " 1

जब दयानन्द का आविर्भाव हुआ तब भारतीय धर्म और संस्कृति का ह्रास हो रहा था। उनके पहले निम्न लोग इस्लाम की ओर तथा शिक्षित और उच्चवर्ग के लोग ईसाइयत की ओर आकर्षित हो रहे थे. हिन्दू आत्म- हीनता का अनुभव कर रहे थे. जब प्रजा ऐसी निराश और उदासीन थी तब दयानन्द ने ही उनमें नवीन चेतना का संचार किया. स्वामीजी ने सामाजिक उपेक्षिताओं को प्यार तथा धर्मच्युतों का स्वागत किया. विधवा विवाह को समर्थन दिया तथा कर्म को भाग्य का अग्रज माना. उन्होंने मूर्ति-पूजा का खण्डन किया. समानता को महत्व दिया तथा अछूतों को हिन्दुत्व की रक्षा दी. स्वामीजी के इन कार्यों ने ही उनको पूर्व सुधारकों से भी अधिक क्रांतिकारी बना दिया.

इस प्रकार " आरम्भिक सुधारवादी आर्यसमाजी आन्दोलन परिस्थिति के आग्रह से राजनैतिक रुप में बदलने लगा यह सत्य है. सामाजिक सुधार की

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 464.

56

अन्य सभी धाराएँ देश के राजनीतिक जीवन में बहने लगीं और यही कारण है कि भारत का राजनीतिक आंदोलन उसी नवचेतना का आवश्यक अंग है. "[1] ईसाई और इस्लाम धर्म से हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिए किसी अन्य संस्था की अपेक्षा आर्यसमाज ने ही अत्यधिक प्रयत्न किए है. आर्यसमाज की प्रेरणा से ही हिन्दू जाति वैदिक धर्म की ओर आकर्षित हुई. इस समाज ने ही वेद विरुद्ध कार्यों पर प्रकाश डाला. उसने भारत की राष्ट्रीय जागृति में महत्वपूर्ण कार्य किया है.

थियोसाफिकल सोसायटी या ब्रह्मविद्या समाज :

हेलेना पेट्रोवना ब्लेवात्स्की नामक एक रूसी महिला ने 7 सितम्बर सन 1875 ई० में आलकाट की सहायता से न्यूयार्क में ब्रह्मविद्या समाज की स्थापना की. इस संस्था का यह उद्देश्य था कि पूर्वी देशोंमें प्रचलित धर्म और ज्ञान का प्रचार पाश्चात्य देशों में भी होना चाहिए. " किन्तु संस्था का सबसे महान और उपयोगी उद्देश्य यह करार कर दिया गया कि विश्वमानवता के आविर्भाव और प्रचार के लिए यह दिखलाया जाय कि धर्म की भिन्नता से एक मनुष्य दूसरे से भिन्न नहीं हो जाता है. सभी मनुष्य एक ही परम-सत्ता से निकले हैं और सभी धर्मों के अच्छे लोग एक समान पवित्र है. "[2]

तिब्बत की संत आत्माओं के बुलाने पर ब्लेवात्स्की और आलकाट 16 फरवरी सन 1879 ई० को अपनी संस्था को लेकर बम्बई आये. तब आर्यसमाज ने उनका स्वागत किया. वे मानते थे कि संस्कृत विद्या को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए. ब्लेवात्स्की बीमार होकर इंग्लैण्ड गई और फिर वह वापस आई ही नहीं. इंग्लैण्ड में उन्होंने " द सिक्रेट डाक्ट्रिन " नामक एक पुस्तक

---

1. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्त्रोत- डा० केसरी नारायण शुक्ल- पृ. 35.
2. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 473.

57

प्रकाशित की. इस पुस्तक से श्रीमती एनी बीसेंट प्रभावित हुई. वे सन् 1889 ई० में ब्रह्मविद्या समाज में दीक्षित हो गई. श्रीमती एनी बीसेंट 16 नवम्बर सन् 1893 ई० में भारत आयीं. कोलोनल आलकाट की मृत्यु के बाद सन् 1907 ई० से लेकर सन् 1933 ई० तक एनी बीसेंट ने इस समाज में भाग लिया. " हिन्दू धर्म को वे विश्व के धर्मों में सबसे प्रधान ही नहीं, सबसे श्रेष्ठ भी मानती थी. " [1] पहले दोनों संस्थाओं के ध्येय एक समान होने से इस संस्था का संबंध आर्यसमाज से रहा लेकिन इसके बाद दोनों में विभेद हो गये. दयानंद ने सभी धर्मों की अपेक्षा वैदिक धर्म को ही महत्व दिया जबकि ब्रह्मविद्या समाज सभी धर्मों में समन्वय चाहता था. इस समय तक इस संस्था का उद्देश्य परोक्ष नियमों का अनुसंधान, वैज्ञानिक प्रगति के साथ बढ़नेवाली अतिभौतिकता पर रोक, उच्च नैतिकतापूर्ण पवित्र जीवनयापन और प्राच्य उच्च धर्मों के तत्वों का प्रचार एवं धार्मिक कट्टरता का शमन था. वे स्वयं साड़ी पहनने लगी और उन्होंने भारतीय रहन-सहन को अपना लिया. उन्होंने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की. वे अंग्रेज महिला थीं. उनका अंग्रेजी भाषा पर असाधारण प्रभुत्व था. वे भारत और हिन्दुत्व को पर्याय मानती थीं. उन्होंने लिखा है कि - " भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते हैं. हम बाहरी लोग आप की चाहे जितनी भी परीक्षा करें, किन्तु आप का उद्धार आप के ही हाथ हैं. आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहें. हिन्दुत्व के बिना भारत के सामने कोई भविष्य नहीं हैं. " [2]

सन् 1914 ई० से श्रीमती एनी बीसेंट राजनीति में भी भाग लेने लगीं. उनके बारे में गांधीजी कहते है कि " जबतक भारतवर्ष जीवित है एनी बीसेंट की सेवाएँ भी जीवित रहेंगी, जो उन्होंने इस देश के लिए की थीं. उन्होंने भारत को अपनी जन्मभूमि मान लिया था. उनके पास देने योग्य

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ.473.
2. वही- पृ. 474.

जो कुछ भी था, उन्होंने भारत के चरणों पर चढ़ा दिया था. इसीलिए भारत--वासियों की दृष्टि में वे उतनी और श्रद्धेया हो गयीं. "[1] थियोसाफी वह असली गहराई है जिसमें से सभी धर्म निकले हैं, अतएव इस आन्दोलन का ध्येय है कि सभी धर्मों में जो तत्व समान हैं उन्हें लेकर सभी धर्मों के बीच एकता स्थापित की जाय. "[2] इस आंदोलन से सभी धर्मों के बीच जो द्वेषभाव था वह मिट गया. थियोसाफी ने विश्व- बन्धुत्व, तुलनात्मक धर्म और परलोक विद्या का संधान इन तीनों को महत्व दिया है. सन 1940 ई० में दिये हुए भाषण में उन्होंने कहा कि हिन्दू धर्म ही वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म है. भारत की प्रजा को ऊपर उठने की प्रेरणा देनेवाली भी एनी बीसेंट ही थीं.

ब्रह्मविद्या समाज ने भारतीयों में आत्म सम्मान, अतीत के प्रति स्वाभिमान और भविष्य में विश्वास उत्पन्न करने की अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय दिया था. डा० भगीरथ मिश्र लिखते हैं कि " राष्ट्रीयता का विकास भारतीय आध्यात्मिकता का नवोत्थान इस ब्रह्मविद्या समाज के द्वारा निश्चय रुप से हुआ. यद्यपि इस समाज का नाम और उत्पत्ति विदेशी है. "[3]

रामकृष्ण मिशन =-

स्वामी दयानन्द, राजा राममोहनराय तथा एनी बीसेंट ने यह सिद्ध किया कि हिन्दू धर्म निन्दनीय नहीं है. लेकिन हिन्दू जनता हिन्दू-धर्म के वास्तविक रुप से परिचित होना चाहती थी. हिन्दू जनता को अपने धर्म का जीता जागता रुप दिखानेवाले थे चैतन्य महाप्रभु के मार्गानुयायी भक्त परमहंस

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 477.
2. वही- पृ. 477.
3. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास- डा० भगीरथ मिश्र- पृ. 130

59

रामकृष्ण. रामकृष्ण को किसी भी धर्म के प्रति आक्रोश की भावना नहीं थी. जब आस्तिक और नास्तिक हिन्दू, ईसाई और मुसलमानों के बीच इस बात पर झगड़ा हो रहा था कि किसका धर्म श्रेष्ठ है तब उन्होंने " सभी धर्मों के मूल तत्व को अपने जीवन में साकार करके मानों, सारे विश्व को यह संदेश दिया कि धर्म को शास्त्रार्थ का विषय मत बनाओ. सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जानेवाले अनेक मार्ग हैं और जो उनका उपदेश था उसे उन्होंने अपने जीवन में उतारा. "[1] उन्होंने सभी धर्मों का अभ्यास किया था. भारतवर्ष की धार्मिक समस्या का जो समाधान रामकृष्ण ने दिया है, उससे बड़ा और अधिक उपयोगी समाधान और कोई नहीं हो सकता. क्रम- क्रम से वैष्णव, शैव, शाक्त, तांत्रिक, अद्वैतवादी, मुसलमान और ईसाई बनकर परमहंस रामकृष्ण ने यह सिद्ध कर दिखाया कि धर्मों के बाहरी रुप तो केवल बाहरी रुप है. उनसे मूलतत्व में कोई फर्क नहीं पड़ता है. साधन और मार्ग अनेक हैं . उनमेंसे मनुष्य किसी को भी चुन सकता है. "[2]

उनको द्रव्य के प्रति वितृष्णा थी. वे एक ऐसे संन्यासी थे जिन्होंने कभी भी गृहत्याग नहीं किया था. सिद्धावस्था को प्राप्त करने के बाद भी वे अपने परिवार के साथ रहते थे. कामिनी और कंचन से ही महापुरुषों की परीक्षा की जाती है. रामकृष्ण को इसमें भी सफलता मिली. वे प्रतिमा का पूजन भी करते थे और ईश्वर आराधना भी. उनका व्यक्तित्व सरल और सहज था. परमहंस रामकृष्ण बुद्धि से दूर रहनेवाले, शील सदाचार के समर्थक तथा भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा है. उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण धार्मिक संकीर्णता के विपक्ष में रहा है. उनके बारे में गांधीजी ने लिखा है कि- " रामकृष्ण की जीवनी व्यवहार में आये हुए जीवित धर्म की कहानी है. "[3] प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी साधक एवं विद्वान आचार्य प्रतापचन्द्र मजुमदार के शब्दों में-

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 483-84.
2. वही- पृ. 484.
3. वही- पृ. 491.

" श्री रामकृष्ण के दर्शन होने के पूर्व, धर्म किसे कहते हैं, यह कोई समझता भी नहीं था. सब आडम्बर ही था. धार्मिक जीवन कैसा होता है, यह बात रामकृष्ण की संगति का लाभ होने पर ज्ञात पड़ी. "[1] वे निर्धन, अशिक्षित व्यवहार में भद्दे, मूर्तिपूजक एवं निस्सहाय हिन्दू भक्त हैं. "[2]

परमहंस रामकृष्ण सभी धर्मों के प्रति उदार रहे हैं. वे राम, शिव, काली सभी की पूजा करते हैं. अर्थात उनकी श्रद्धा सभी देवों के प्रति समान रही हैं. वे वेदांत में भी श्रद्धा रखते हैं. " वे प्रतिमा पूजक हैं, किन्तु निरंजन और निराकार की पूर्णता का ज्ञान कराने में भी उनसे बढ़कर कोई और माध्यम नहीं हो सकता. उनका कर्म आनन्द है, उनकी पूजा समाधि है. अहर्निश उनका समस्त अस्तित्व एक विचित्र विश्वास और भावना की ज्वाला से प्रदीप्त रहता है. "[3] परमहंस में धर्म और दर्शन के सभी रुप समाहित होने के कारण जो कोई व्यक्ति उनके संपर्क में आता वह उनसे प्रभावित हो जाता था. पंडित नेहरु ने लिखा है " जिस किसी ने उनको देखा उस पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी और अनेकानेक जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा था उनकी जीवन कथा से प्रभावित हुए. "[4]

उनके देहावसान के बाद उनके शिष्य विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की. इस मिशन के अनेक केन्द्र भारत तथा अमेरिका में स्थापित किये गये. परमहंस ने धर्म की सारी उपलब्धियाँ अपने आप प्राप्त की थी. उन उपलब्धियों के आधार पर ही विवेकानन्द ने सारे विश्व की समस्याओं पर विचार किया. उन्होंने जो समाधान दिये हैं वे भी रामकृष्ण के समाधान के

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 491.
2. वही- पृ. 491.
3. वही- पृ. 492.
4. Discovery of India - Pt. Nehru - P. 356.

61

आधार पर ही दिये हैं. दिनकरजी ने लिखा है " रामकृष्ण और विवेकानन्द,
रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानन्द उनकी व्याख्या बन कर आये।
ये दोनों, एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं. रामकृष्ण दर्शन थे, विवेकानन्द ने उनकी क्रिया पक्ष का आख्यान किया. स्वामी निवेदानन्द ने रामकृष्ण को हिन्दू धर्म की गंगा कहा है जो वैयक्तिक समाधि के कमंडलु में बंद थी. विवेकानन्द इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देव सरिता को रामकृष्ण के कमंडलु से निकालकर सारे विश्व में फैला दिया. " [1]

स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ दत्त) का जन्म जनवरी 12, सन 1863 ई0 में कलकत्ता में हुआ था. वे क्षत्रिय जाति के थे. उनका शरीर सशक्त था. उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ बी0 ए0 की उपाधि प्राप्त की थी. वे कुश्ती, बाक्सिंग, दौड़ के प्रेमी थे. वे संगीतज्ञ भी थे. वे संस्कृत, अंग्रेजी के पंडित थे. रवीन्द्रनाथ ने विवेकानन्द के बारे में लिखा है, " यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानन्द को पढ़ना चाहिए. " [2] महर्षि अरविन्द ने लिखा है, " पश्चिमी जगत में विवेकानन्द को जो सफलता मिली, वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्यु से बचने को नहीं जगा है, वरन, वह विश्व विजय करके दम लेगा. " [3] सन 1893 ई0 में वे शिकागो में निखिल विश्व के धर्मों के महासम्मेलन में उपस्थित रहने के लिये गये. उनके भाषण से सभी लोग मंत्रमुग्ध हो गए. " उनके भाषणों पर टिप्पणी करते हुए " द न्यूयार्क हेरल्ड ने लिखा है कि धर्मों की पार्लमेंट में सबसे महान व्यक्ति विवेकानन्द हैं. उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिए धर्म प्रचारक भेजने की बात कितनी बेवकूफी की बात है. " [4] वे शिकागो से अमेरिका और इंग्लैण्ड गये जहाँ वे तीन साल तक रहे. उन्होंने भाषणों, वार्तालापों, लेखों,

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 493.
2. वही- पृ. 497.
3. वही- पृ. 497.
4. वही- पृ. 499.

62

कविताओं, विवादों और वक्तव्यों के द्वारा हिन्दू- धर्म के सार को समग्र यूरोप में फैला दिया. बादमें, अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग भी उनसे प्रभावित हुए. " इस प्रकार, हिन्दुत्व को लीलने के लिये, अंगरेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के पेट से जो तूफान उठा था, वह स्वामी विवेकानन्द के हिमालय जैसे विशाल वक्ष से टकराकर लौट गया. " [1] वे निराश एवं पतित हिन्दू मस्तिष्क के लिये एक " टानिक " बनकर आये थे. उन्होंने उसमें आत्मविश्वास तथा अतीत के प्रति आस्था उत्पन्न की. " [2]

उन्होंने सोई हुई हिन्दू जनता को कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का अमर संदेश दिया. भारत की पराधीनता को देखकर उन्होंने कहा था कि अब पराधीनता समाप्त होने वाली है. जब मातृभूमि उन्नति के पथपर अग्रसर हो रही है तब भारत को बाहय शक्ति का डर नहीं है. वे कहते है कि " " हमारी मातृभूमि दर्शन, धर्म, नीति विज्ञान, मधुरता, कोमलता, अथवा मानवजाति के प्रति अकपट प्रेम रुपी सद्गुणों की प्रसविनी है. ये सब बातें अभी भी भारत में विधमान है। मुझे इस संबंध में जो जानकारी है, उसके बल पर दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि भारत इन सब बातों में पृथ्वी के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं. " [3]

स्वामीजी ने हिन्दूधर्म की कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं बाहयाडम्बरों का खण्डन किया. वे मानते थे कि अंधविश्वास आध्यात्मिक जीवन के लिए एक बाधा ही है. उन्होंने हिन्दुओं की जाति-पाति, छुआछूत, ऊँच-नीच आदि पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि- " हमारा धर्म चूल्हे चौके में है, भोजन बनाने का बर्तन हमारा ईश्वर है, और हमारा धर्म है- मुझे स्पर्श न करो, मैं पवित्र हूँ. " [4]

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारीसिंह दिनकर- पृ. 499.
2. Discovery of India - Pt. Nehru- P. 356.
3. स्वाधीन भारत जय हो : स्वामी विवेकानन्द- पृ. ९
4. Discovery of India - Pt. Nehru- P. 357.

63

विवेकानन्द की मान्यता थी कि यह विश्व किसी विश्व बाह्य " ईश्वर " की कृति नहीं है और न वह किसी बाह्य प्रतिभा का ही चमत्कार है. वह तो स्वयंभू, स्वयंलयशील और स्वयं प्रकाशी, अद्वैत असीम सत्ता ब्रह्म ही है. उनकी मान्यता थी कि चाहे हम उसे वेदान्तवाद कहें चाहे और कुछ, सत्य तो यह है कि " अद्वैतवाद " ही धर्म और चिन्तन का चरम संदेश है. यही एक स्थिति है जहाँ से समस्त धर्मों और सम्प्रदायों के प्रति प्रेम-दृष्टि डाली जा सकती है. मेरा विश्वास है कि यही भावी जाग्रत मानवता का धर्म भी है. व्यावहारिक अद्वैतवाद समग्र मानवता को आत्मवत् देखने का संदेश देता है. उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि भारतीय आध्यात्मिक भूमिका के साथ पाश्चात्य भौतिक उन्नति को अपनाया जाय. दिनकरजी ने लिखा है "
" राममोहन, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द, रानडे, एनी बीसेंट, रामकृष्ण एवं अन्य चिन्तकों तथा सुधारकों ने भारत में जो जमीन तैयार की, विवेकानन्द उसमें अश्वत्थ होकर उठे. अभिनव भारत का जो कुछ कहना था, वह विवेकानन्द के मुख से उद्गीर्ण हुआ. अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया. विवेकानन्द वह सेतु है जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं. विवेकानंद वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता तथा उपनिषद और विज्ञान सबके सब समाहित होते हैं. " [1]

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक :-

प्रवृत्तिमार्ग के आधार पर तिलकजी ने " कर्मयोगशास्त्र " नामक पुस्तक लिखी. " यह ग्रंथ हिन्दुत्व की उस अवस्था का परिचायक है, जबकि यूरोपीय संस्कृति की टकराहट से उठनेवाला कंपन समाप्त हो जाता है एवं हिन्दुत्व नवीन जन्म ग्रहण करके अपने अनुयायियों को नयी परिस्थितियों से लोहा लेने का उपदेश देता है. " [2]

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 497.
2. वही- पृ. 511.

64

विवेकानन्द का उद्देश्य मनुष्य को समीप लाना था जबकि तिलकजी का उद्देश्य राजनीतिक था. वैदिक युग में प्रवृत्ति का तथा उपनिषदों के युग में निवृत्ति का प्राधान्य था. जैन और बौद्ध धर्मों में भी निवृत्ति मार्ग की प्रधानता रही. गृहस्थ भी सन्यासी होने में अपनी महत्ता मानते थे. वे कर्म को दुःख का कारण मानते थे. वे गार्हस्थ्य जीवन को मोक्षप्राप्ति में बाधक और सन्यास को सर्वफल सिद्धि का साधन मानते थे. आधुनिक युग में स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक आदि ने प्रवृत्ति मार्ग को महत्व दिया. उन्होंने यह घोषणा की कि 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है. "

तिलकजी ने कर्मयोग का संदेश दिया है. गीता कभी भी संसारत्याग में नहीं मानती है. गीता का उद्देश्य संसार त्याग नहीं है. लेकिन उसमें कहा गया कि मनुष्य को कर्मरत बनना चाहिए. गीता ने प्रवृत्ति और कर्म को महत्व दिया है. " वे हिन्दुओं की पतनशीलता से दुखी थे, वे पराधीनता से क्षुब्ध थे. अतएव, गीता की व्याख्या के बहाने उन्होंने समस्त हिन्दू जाति में वह प्रेरणा भर दी जिससे कर्तव्याकर्तव्य के निश्चय में दार्शनिक सूक्ष्मताएँ उसके मार्ग का अवरोध नहीं कर सकतीं. तथा जिससे जड़ परिस्थितियों के अनुसार धर्माधर्म का ठीक-2 समाधान हो जाता है.

तत्कालीन समाज तिलकजी के अपूर्व व्यक्तित्व एवं विद्वता से प्रभावित हुआ है. सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि विविध क्षेत्रों पर कर्मवाद की प्रधानता रही है. " वस्तुतः भारतीयों में स्वतंत्रता के प्रति जो आकुल प्रयत्न, छटपटाहट तथा विद्रोह एवं क्रान्तिकारी भावनायें तत्कालीन समाज एवं साहित्य में दिखाई देती हैं उसके जनक निश्चय ही तिलकजी माने जायेंगे. " [1] उन्होंने " गीतारहस्य " में प्रवृत्ति का प्रतिपादन किया है.

---

1. पंत का काव्य - डा० प्रेमलता बाफना- पृ. 85.

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी के विचारों से सारे देश की जनता प्रभावित हुई हैं. वे जातिपांति के भेदभावमें मानते नहीं है. वे मानते थे कि सभी मनुष्य समान है कोई ऊँच, कोई नीच या कोई गरीब और कोई धनी नहीं है. अर्थात उन्होंने समानता पर ही अत्यधिक बल दिया है. वे अहिंसा नामक शस्त्र से लड़े, अहिंसा को गँवा कर वे भारत को स्वाधीन करने के पक्षपाती नहीं थे. भारतीय स्वाधीनता बहुत बड़ा लक्ष्य थी, किन्तु उससे भी बड़ा ध्येय, मानवस्वभाव में परिवर्तन लाना था, मनुष्य को यह विश्वास दिलाना था कि जिन ध्येयों की प्राप्ति के लिये वह पाशविक साधनों का सहारा लेता है, वे ध्येय मानवोचित साधनों से भी प्राप्त किये जा सकते हैं. गांधीजी का मुख्य उद्देश्य अपने देशवासियों के कष्टों का निवारण नहीं, प्रत्युत मनुष्य के पाशवीकरण का अवरोध था. अर्थात आत्मबल शारीरिक बल से अधिक श्रेष्ठ है. उन्होंने अपने जीवन में उपवास, तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा आदि को महत्व दिया है. सर्वोदय की भावना के द्वारा वे त्याग के आदर्श को संस्थापित करना चाहते हैं. उन्होंने सर्वसाधारण की सेवा को जीवन का लक्ष्य माना. उनके अनुसार " सत्यमेव जयते " और " अहिंसा परमोधर्म " ये दो ही भारतीय राजनीति के महामंत्र हैं.

तत्कालीन हिन्दी साहित्य भी गांधी-दर्शन और गांधी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुआ है. - " गांधीजी के स्वदेशप्रेम, स्वातंत्र्य-संघर्ष, जागरण सुधार, साम्प्रदायिक एकता, धार्मिक औदार्य, पर-सेवा आदि सिद्धान्तों को मैथिली बाबू ने बड़े उत्साह के साथ ग्रहण किया है, परन्तु सत्य और अहिंसा को उन्होंने रामभक्ति के अनुरुप ढालकर ही स्वीकार किया है. " [1] अर्थात गुप्तजी ने अपनी रचनाओं में सत्य, अहिंसा, मानवता, एकता आदि को प्रधानता दी है. गांधीजी की भाँति गुप्तजी मानते है कि

1. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र- पृ. 49.

कृषकवर्ग के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए. उनके प्रति भी समानता रखनी चाहिए. गांधीजी सर्वधर्म समन्वय में आस्था रखते हैं, वैसे ही गुप्तजी भी रखते हैं. " जहाँ गांधी-नीति और रामभक्ति में मौलिक भेद है वहाँ मैथिलीबाबू ने गांधी-नीति को स्वीकार नहीं किया, जैसे कि अवतारवाद आदि के संबंध में. सिद्धांततः गांधी निर्गुण भक्तों की परम्परा में आते हैं. मैथिलीशरण ने सगुण और साकार उपासना को विधिवत और पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रहण किया है. " [1]

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्रनाथ टैगोर का कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है. उन्नीसवीं शताब्दी में जो सांस्कृतिक आन्दोलन हुआ उसमें टैगोर के परिवार ने महत्वपूर्ण सहयोग दिया है. पं० नेहरु ने लिखा है - " यद्यपि वे राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिरभी उन्होंने अपने उच्चकोटि के काव्य तथा संगीत के द्वारा भारतीय जनता को स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सदैव प्रेरित किया. " [2] उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन में भी भाग लिया था. सन 1913 ई० में उनको " गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार मिला. इसके बाद उनको विश्वकवि का पद दिया गया. सरकार ने उनको " नाइटहुड " की उपाधि दी किन्तु वे जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड से विचलित हो उठे और उन्होंने इस उपाधि को अस्वीकार कर दिया. भारतीय कला और संस्कृति को महत्व देने के उद्देश्य से उन्होंने शान्तिनिकेतन की स्थापना की. उनके साहित्य एवं चिन्तन से सिर्फ बंगाली ही नहीं लेकिन समस्त भारतीय भाषाएँ प्रभावित हुई हैं. एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति होते हुए भी वे भारतीय भूमि और उपनिषदों से आकृष्ट हुए हैं. भारत के मस्तिष्क, विशेषकर आने आनेवाली पीढ़ी पर उनका बड़ा ही प्रबल प्रभाव पड़ा. सामन्तवादी कलाकार होते हुए भी टैगोर की दलित और पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति रही है. वे भारत की उस प्राचीन स्वस्थ सांस्कृतिक

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र- पृ.50
2. Discovery of India - Pt. Nehru - P. 361.

परम्परा का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं. जो जीवन की सम्पूर्णता को लिए हुए हैं. टैगोर और गांधीजी दोनों ने ही " विश्वमानवतावाद " को प्रधानता दी है.

महर्षि अरविन्द

हिन्दू नवोत्थान में महायोगी अरविन्द का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है. वे मानते है कि कोई भी देश या जाति को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए विश्व के साथ रहना चाहिए. सारे संसार में परिवर्तन हो रहा है वैसा ही परिवर्तन भारत में भी होगा. " भारत भौतिक समृद्धि से हीन है, यद्यपि, उसके जर्जर शरीर में आध्यात्मिकता का तेज वास करता है. यह देश यदि पश्चिम की शक्तियों को ग्रहण करे और अपनी शक्तियों का भी विनाश नहीं होने दे, तो उसके भीतर से जिस संस्कृति का उदय होगा वह अखिल विश्व के लिए कल्याणकारिणी होगी. वास्तव में वही संस्कृति विश्व की अगली संस्कृति बनेगी. " [1] वे मानते थे कि विज्ञान से मनुष्य का शरीर सुखी हो सकता है. अर्थात् विज्ञान मनुष्य को भौतिक समृद्धि दे सकता है लेकिन आन्तरिक सन्तोष देने में वह असमर्थ है.

वे मानवता की बौद्धिक समस्याओं का समाधान इस प्रकार देते हैं मनुष्य जिस बौद्धिक स्तर पर बैठा हुआ है, उससे ऊपर उठकर वह एक नयी भूमि पर अवस्थित होने का प्रयास करे जो अतिमानस की भूमि है. जब मनुष्य अतिमानस की स्थिति तक पहुँच जाता है तब बुद्धि की अज्ञानता दूर हो जाती है. " मस्तिष्क से ऊपर अतिमानस का देश है जबतक मनुष्य इस देश में पाँव नहीं रखता, उसका कल्याण नहीं होगा. " [2] उनकी साधना " योग "

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 520.
2. वही- पृ. 526.

68

नाम से प्रचलित है. योग में कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को महत्ता दी गई है. " कर्म, ज्ञान और भक्ति के इस संश्लेषण से भी यही शिक्षा निकलती है कि अरविन्द भूत(द्रव्य), जीवन और मस्तिष्क इन तीनों को दिव्य बनाकर इस जीवन में दिव्य जीवन की अवतारणा करना चाहते हैं. " [1] उनकी अतिमानस और अतिमानव की धारणा ने दर्शन और साहित्य, मनोविज्ञान और योग के बीच समन्वय किया है.

इस प्रकार अनेक धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों से भारतीय जनता में नवीन चेतना का संचार हुआ. जिसके फलस्वरुप, हिन्दू जनता सामाजिक कुरुढ़ियों के प्रति घृणा करने लगी. और अपनी जाति के उत्थान और विकास के लिए उसका आकर्षण बढ़ा. भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहास में इन सांस्कृतिक आन्दोलनों एवं उनके पुरस्कर्ताओं का अमूल्य योगदान है. इन्हीं के सत्प्रयासों के फलस्वरुप लोक-जीवन में नयी चेतना का संचार हुआ और देश नव-निर्माण की ओर अग्रसर हो, स्वाधीनता के स्वप्न देखने लगा.

इन सांस्कृतिक आन्दोलनों का हमारे आलोच्य कवि के काव्य और जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है.

साहित्यिक -

बीसवीं शताब्दी में " धार्मिक आंदोलनों ने जो संस्कार तैयार किये उन्हीं से ओतप्रोत इस युग के सामाजिक और राजनीतिक नेता रहे और उन्हीं से प्रभावित होकर साहित्य की सृष्टि भी हुई. " [2] अर्थात इन आंदोलनों से आधुनिक साहित्यकार भी बहुत दूर तक प्रभावित हुए हैं.

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही खड़ी बोली काव्य भाषा के पद पर

---

1. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर- पृ. 527.

2. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास- भगीरथ मिश्र- पृ. 129

69

पूर्णतया आसीन हुई है. इसके पूर्व हिन्दी गद्य अपरिपक्व दशा में था. सन् 1837 ई0 में सरकारी कार्यालयों की भाषा उर्दू हो गई जो पहले फारसी थी. भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी भाषा किसी भी रुप में प्रतिष्ठित नहीं थी. सदासुखलाल, इंशा-अल्ला, लल्लूलाल आदि की भाषा भी व्रजमिश्रित थी. सदलमिश्र की भाषा पूर्वीपन और पुटानापन से मिश्रत थी. देवीप्रसाद और देवकीनन्दन खत्री की सच्ची हिन्दुस्तानी भी किसी को पसंद नहीं आई. राजा लक्ष्मणसिंह ने विशुद्ध हिन्दी को अपनाया लेकिन वह भाषा भी संस्कृत मिश्रित होने के कारण कृत्रिम और त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुई.

जब हिन्दी साहित्यकार किसी सरल, सुंदर और सहज भाषा की इच्छा कर रहे थे, तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पदार्पण किया. खड़ी बोली व्यवहार और ग्रंथों में प्रयुक्त होती थी लेकिन उसका स्वरुप निश्चित नहीं था. भारते--न्दुजी ने छोटे-2 वाक्यों का प्रयोग किया और गद्य का बहुत सरल रुप रखा. उन्होंने भाषा के लिए संग्राम किया.

भारतेन्दुजी के साथ-2 दयानंद सरस्वती, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन आदि ने भी भाषा निर्माण में अपना सहयोग दिया. उन्होंने हिन्दी को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किये.

उन्नीसवीं शती के गद्य का मूल्यांकन उस युग और इतिहास की दृष्टि से है . वस्तुतः इन बातों के होते हुए भी भारतेन्दुयुग ने खड़ी बोली में पर्याप्त उच्चकोटि की रचना नहीं की. उस युग की अशुद्ध और संकद् खड़ीबोली प्रांजल, परिष्कृत और परिमार्जित न हो सकी. " [1] पद्य के लिए व्रजभाषा ही उपयुक्त समझी जाती थी लेकिन गद्य में भी व्रज और अवधी की प्रधानता रही. दयानंद और भारतेन्दु की भाषा में प्रान्तीयता की प्रधानता है. " यद्यपि बंगला के प्रभाव से हिन्दी में कोमलता और अभिव्यंजना शक्ति आ रही थी और अंग्रेजी के प्रभाव से विराम आदि चिन्हों का प्रयोग होने लगा था तथापि यह सब

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग- उदयभानुसिंह- पृ. 32.

शून्यवत् था. इन सबके अतिरिक्त तत्कालीन लेखकों ने व्याकरण संबंधी दोषों के सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया. उसके रुप में सर्वत्र अस्थिरता और असंयतता बनी रही. " [1] " इनने ", " उनने ", " इन्हैं ", " उन्हैं ", " मुझे ", " सक्ती ", " जिसमें " आदि शब्दों की प्रधानता रही. भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र के बाद के लेखकों का ध्यान भाषा की शुद्धता या शैली की शुद्धता की ओर न गया. हिन्दी भाषा और साहित्य में अराजकता फैल गई. उस समय हिन्दी को अनिवार्य अपेक्षा थी एक ऐसे प्रभविष्णु सेनानी की **ग्रग्र** जो उस अवस्था में व्यवस्था स्थापित करके भ्रांत और अनजान लेखकों का पथ प्रदर्शन कर सकें. " [2] भारतेन्दुजी की मृत्यु के बाद खड़ी बोली में पद्यरचना करने का कार्य बड़ा मुश्किल था. कोई महान व्यक्ति ही ऐसा साहस कर सकता था. श्रीधर पाठक ने देखा कि सन 1885 के आसपास हिन्दी गद्य लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है. इतना ही नहीं, लोकमानस का झुकाव भी गद्य की ओर था. भिन्न भाषाओं की पाठ्यपुस्तकें, अखबारों की रिपोर्ट और जनजीवन की अन्य भाषा आधारित सूचनाएँ भी हिन्दी गद्य में ही जनता के लिए उपयोगी बन सकती है. लेकिन वे भी इस बात से परेशान थे. ब्रजभाषी अंचलों से छपनेवाले ग्रंथ बिहार-बंगाल-उड़ीसा तक में पठनीय हो सकते थे. लेकिन हिन्दी पद्य पठनीय नहीं थे. केवल ब्रजभाषा के पद्य उत्तर भारत के एक क्षेत्र में समझे जाते थे. बिहार और अन्य भाषा के क्षेत्रों में ब्रजभाषा दुरुह मानी जाती थी. इन क्षेत्रों के विद्यार्थी ब्रज की कविता समझने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते थे. " साहित्य या विद्या से अलग क्षेत्रों में ब्रज के पद्य काला अक्षर भैंस बराबर ही थे. " [3] इस प्रकार गद्य और पद्य की भाषा विषयक समस्या बड़ी

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग- उदयभानुसिंह- पृ. 33
2. वही- पृ. 33.
3. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ- " इकहत्तर वर्षों की अभिनंदनीय गाथा- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक " बरुआ " पृ. 276.

विषम थी. श्रीधर पाठकजी बिहार के थे. उन्होंने ब्रज का विरोध किया जो स्वाभाविक भी था. उन्होंने सन् 1886 के 16 दिसम्बर के " बिहारबन्धु " नामक पत्र के अंक में हिन्दी पद्यों की शोचनीय अवस्था पर एक लेख भी लिखा. सन् 1886 ई० में उनकी " एकांतवासी योगी " नामक रचना प्रकाशित हुई. जिसमें खड़ी बोली काव्य को प्रमाणित ठहराने का प्रयास किया गया. अयोध्याप्रसाद खत्री ने जिस खड़ीबोली को इतना महत्व दिया है उसमें श्रीधर पाठक का कम महत्व नहीं है. सन् 1887 ई० में खत्रीजी ने " खड़ी बोली का पद्य " को प्रकाशित करवाया. उन्होंने लिखा- " खड़ीबोली के व्याकरण में ब्रजभाषा छंद को जगह देना और ब्रजभाषा शब्दों को हिन्दी में " पोयटिकल लाइसेंस " समझना हिन्दी व्याकरण की मेरी समझ में भूल हैं."[1] इस प्रकार वे मानते थे कि ब्रजभाषा की कविता हिन्दी भाषा की कविता नहीं मानी जा सकती. श्रीधर पाठक और अयोध्याप्रसाद खत्री के प्रबल विरोधी राधाचरण गोस्वामी थे. वे अपने को " खड़ी बोली का विरोधी " कहते थे. गोस्वामीजी के तर्कों का उत्तर देते हुए श्रीधर पाठक ने सन् 1887 के 20 दिसम्बर वाले " हिन्दुस्तान " के अंक में कहा कि- " यह (खड़ी बोली गद्य) अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की भाषा है और योरोपियन इसे यहाँ की फ्रेंच जबान (लिंगुआ फ्रेंका) करके समझते हैं. यह आवश्यक नहीं है कि जिन छंदों का ब्रजभाषा पद्य में व्यवहार किया जाता है, उन्हीं का केवल हिन्दी में व्यवहार किया गया. घनाक्षरी, सवैया आदि के अलावा अनेक ऐसे छंद हैं, जिनका प्रयोग खड़ी बोली कविता में बड़ी सुंदरता से हो सकता है और यदि आवश्यकता पडी तो वे छंद खडीबोली में प्रस्तुत भी किए जायगे. "[2] यह कार्य पाठकजी ने किया. पाठकजी ने प्रतापनारायण मिश्र को 8 मार्च सन् 1888 के " हिन्दुस्तान " में उत्तर देते हुए खड़ी बोली के लिए लिखा है कि - " अभी वह वय:संधि में ही है. "[3] श्रीधरपाठक को पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ- " इकहत्तर वर्षों की अभिनंदनीय गाथा- श्री ऋषि जैमिनी कौशिक " बरुआ ". पृ. 276.
2. वही- पृ. 276.
3. वही- पृ. 277.

72

बनाया गया.

भारतेन्दुजी की मृत्यु के बाद महावीरप्रसाद द्विवेदी का आगमन हुआ. " कविता के क्षेत्र में वे विषय, भाव, भाषा, शैली और छंद की नवीनता लेकर आए. हिन्दी के उच्छृंखल निबन्ध को निबन्धता, एकतानवादी और पद्य निबंधों की अभिनव परम्परा को आगे बढाया. "[1] उन्होंने आधुनिक समालोचना शैली का सूत्रपात किया. " सम्पत्ति शास्त्र ", " शिक्षा " " स्वाधीनता " आदि विषयों की मौलिक और अनुदित पुस्तकें भी प्रकाशित हुई. विदेशी सभ्यता के कारण भारतीय प्रजा हीनता का अनुभव कर रही थी. उनके हृदय में आत्माभिमान का भाव पैदा करने वाले द्विवेदी जी ही है.

काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रयाग के अनुमोदन से सन 1900 ई० में " सरस्वती " का प्रकाशन आरंभ हुआ. प्रथम बारह संख्याओं में संपादकों के अतिरिक्त अन्य दस लेखक " सरस्वती " में लिखते थे. वह पत्रिका बहुत सीमित थी. उसमें सोलह से इक्कीस पन्ने ही रहते थे. सन 1901 ई० में श्यामसुंदरदास इस पत्रिका के संपादक थे. सन 1902 से " सरस्वती " में द्विवेदीजी के लेख प्रकाशित होने लगे. " सन 1902 ई० के अंत में श्यामसुंदरदास ने भी सम्पादन करने में असमर्थता प्रकट की. उन्होंने सम्मति दी, बाबू चिन्तामणि घोष ने प्रस्ताव किया और पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने " सरस्वती " का सम्पादन स्वीकार कर लिया. "[2]

उन्होंने " सरस्वती " के उद्देश्यों की दृढता के साथ रक्षा की. अपने करुण स्वामियों को कभी भी उलझन में न डाला. उनकी " सरस्वती " सेवा क्रमशः फूलती फलती गई. उनकी कर्तव्यनिष्ठा और न्याय परायणता के कारण

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग- डा० उदयभानुसिंह- पृ. 33.
2. वही- पृ. 162.

73

प्रकाशकों ने उन्हें सर्वदा अपना विश्वास पात्र माना. " [1] द्विवेदीजी हिन्दी भाषियों की मानसिक भूमिका का विकास करना, संस्कृत साहित्य का पुनरुत्थान खड़ीबोली कविता का उन्नयन, नवीन पश्चिमीय शैली की सहायता से भावाभिव्यंजन, संसार की वर्तमान प्रगति का परिचय और साथ ही प्राचीन भारत के गौरव की रक्षा करना चाहते थे. उन्होंने हिन्दी पाठकों की असंस्कृत रुचि का परिष्कार किया. " वस्तुत: उनके सम्पादक जीवन की समस्त साधना " सरस्वती " पाठकों के ही कल्याण म के लिए थी. विविध विषयक उपयोगी और रोचक लेखों, आख्यायिकाओं, कविताओं, श्लोकों, चित्रों, व्यंग-चित्रों, टिप्पणियों आदि के द्वारा जनता के चित्त को " सरस्वती " के पठन में रमाया. " [2] इसीलिए सन 1903 से सन 1925 तक के काल को " द्विवेदी-युग " कहा गया है. क्योंकि उस युग की गद्यात्मक और पद्यात्मक रचना द्विवेदी जी की शैली के आधार पर लिखी गई है. इस युग के उत्तरार्द्ध में मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य क्षेत्र में आगमन हुआ.

" गद्य और पद्य की भाषा एक करने पर भी द्विवेदी जी ने विशेष जोर दिया. " [3] भारतेन्दुजी " पद्य के लिए ब्रजभाषा ही उपयुक्त समझते हैं, पर संभवत: वे दूर दृष्टि से यह समझ सके थे कि जो भाषा आज हमारे काम-काज और साहित्य के विशेष अंग की भाषा बनती चली जा रही है, यह कैसे संभव है कि उसमें कभी कविता की रचना करने का प्रश्न न उठे. " [4] फिरभी भारतेन्दुजी ने खड़ी बोली में काव्य रचना नहीं की. इसका कारण यह भी हो

---

1. " साहित्य-संदेश " - एप्रिल, 1939 ई० में प्रकाशित आत्मनिवेदन के आधार पर- महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा० उदयभानुसिंह पृ. 163 से उद्धृत.
2. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग- डा० उदयभानुसिंह- पृ. 163-64.
3. रसज्ञ रंजन- महावीरप्रसाद द्विवेदी- पृ. 7-8
4. गुप्तजी की कला- सत्येन्द्र- पृ. 3

सकता है कि खड़ीबोली में ब्रजभाषा सी मिठास नहीं है. दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि उनमें वैष्णव- भावना थी और वे अपनी वैष्णव भावना को खड़ी बोली में व्यक्त न कर पाये हो. इसी लिए उन्होंने यह माना होगा कि " गद्य " के लिए खड़ी बोली और " पद्य " के लिए " ब्रज " ही उपर्युक्त भाषा है.

प्राकृत और अपभ्रंश के बाद हिन्दी भाषा का उद्भव हुआ. " मध्यकाल के पहले भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियों ने विकसित होकर ब्रज, अवधी और खड़ीबोली का रुप धारण किया. " [1] इनमें से ब्रज और अवधी में विपुल मात्रा में काव्य लिखे गए लेकिन खड़ी बोली उपेक्षित ही रही. इसी लिए खड़ी बोली की उत्पत्ति के बारे में भी मतभेद प्रचलित हैं. विद्वान लोग मानते है कि खड़ी बोली नवाविष्कृत भाषा है. इस भाषा के बारे में दूसरा मत यह प्रचलित है कि उर्दू के फारसी- अरबी के शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों को रखकर इस भाषा का निर्माण किया गया है. लेकिन ये केवल भ्रम ही है. इनके विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह है कि रामप्रसाद निरंजनी, इशाअल्लाखाँ, सदल मिश्र, लल्लूलाल तथा सदासुखलाल की रचनाओं में उपलब्ध भाषागत प्रौढ़ि और वाक्यगत विन्यास किसी नव- निर्मित भाषा में नहीं आ सकते. " [2] बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक ब्रजभाषा ही एक मात्र भाषा होने के कारण अनेक भ्रांतियाँ उपस्थित हुई. इससे स्पष्ट है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक खड़ीबोली एक कोने में पड़ी रही. वैसे तो खड़ी बोली का आभास अपभ्रंशकाल से ही मिलता है. लेकिन खड़ीबोली काव्यभाषा के रुप में आधुनिक काल से ही व्यवहृत हुई हैं. पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि - " किसी भाषा का साहित्य में व्यवहार न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व नहीं था. " [3]

---

1. हिन्दी भाषा- श्यामसुंदरदास- पृ. 43-44.
2. मैथिलीशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकान्त- पृ. 284.
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल- पृ. 408-409.

75

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों की अपभ्रंश में लिखी गई काव्य-कृतियों में भी खड़ी बोली के लक्षण मिलते हैं. उस समय की रचनाओं में " आ " कार की प्रधानता रही है. अपभ्रंश के बाद रासो ग्रंथ मिलते हैं. रासो ग्रंथ में भी खड़ी बोली की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है. चौदहवीं शताब्दी में खड़ी बोली का काफी परिमार्जित रुप मिलता है. भक्तिकाल की रचनाओं में खडीबोली का आभास मिलता है. रहीम, भूषण , सूदन, तोष आदि की रचनाओं में भी खड़ीबोली के अनेक उदाहरण मिलते हैं. अकबर के समकालीन कवि गंग की रचना खडीबोली में लिखी गई हैं. रामप्रसाद निरंजनी की योगवासिष्ठ स्वच्छ खड़ीबोली में लिखी गई रचना है. मध्यकाल में खड़ीबोली का रुप प्रचलित था फिर भी साहित्य के क्षेत्र में उसे स्थान नहीं मिल पाया था. आधुनिककाल में भी खड़ीबोली का प्रयोग गद्य में ही होता था और पद्य में ब्रजभाषा का. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद खडीबोली का आंदोलन चला. इस आंदोलन के पहले वह गद्य की भाषा थी. लेकिन अब खड़ीबोली में पद्य भी लिखा जाने लगा. बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही ब्रज का स्थान खडीबोली ने ले लिया. पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ही खड़ीबोली को पद्य की भाषा के रुप में पूर्ण प्रतिष्ठित किया. " द्विवेदीजी का गौरव इस बात में है कि उनके आदर्श, उपदेश और सुधार के परिणामस्वरुप ही हिन्दी संसार ने गद्य की भाषा को ही पद्य की भाषा स्वीकार कर लिया. " [1]

अध्यापक पूर्णसिंह पूर्ण, कामताप्रसाद गुरु, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, रामचरित उपाध्याय, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि खड़ी बोली के प्रारंभिक लेखक हैं. इसके बाद सन 1905 में गुप्तजी ने " हेमंत " नामक रचना लिखी जो " सरस्वती " में छपी. द्विवेदी जी की " कुमारसंभव सार " का प्रकाशन सन 1920 ई० में हुआ. " कुमार संभव सार " खड़ीबोली में लिखी गई रचना है. इस रचना से गुप्तजी अत्यधिक

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग- डा० उदयभानुसिंह-पृ. 291.

76

प्रभावित हुए और उन्होंने भी खड़ीबोली में रचनाएँ लिखीं. बादमें एक सारा वर्ग उनके आदर्शों पर चलने लगा. " इस वर्ग में मैथिलीशरण गुप्त सबसे आगे थे. लगभग बीस वर्ष तक कविता-संबंधी द्विवेदी जी के विचारों ने हिन्दी जगत पर एकच्छत्र राज किया. इसीसे यह पहले बीस वर्ष " द्विवेदी युग " कहलाये. " [1]

श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली में काव्य रचनाएँ कीं. उन्होंने अंग्रेजी से अनुवाद किये और प्रकृति और देशभक्ति संबंधी अनेक रचनाएँ खड़ीबोली में लिखीं. अर्थात खड़ीबोली कविता के उन्नायक श्रीधर पाठक हैं. उनके बाद पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी आये. उन्होंने संस्कृत और मराठी काव्य का आधार लिया था. जिससे भाषा रससिक्त होती गई. पंडित द्विवेदीजी के आगमन से लोगों की दृष्टि संस्कृत की ओर भी गई. खड़ी बोली में जो ब्रज और अवधी का मिश्रण था उसको दूर कर दिया. " सरस्वती " पत्रिका के द्वारा अनेक पद्यकारों को भी जन्म दिया. इनमें मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल, रामचरित उपाध्याय, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल " सनेही " और पंडित रामनारायण पांडेय प्रमुख कवि है. इन कवियों की रचनाएँ द्विवेदीयुग का प्रतिनिधित्व करती हैं. पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी की कविताओं में खड़ीबोली का रुप मिल नहीं पाता है. उन्होंने तो कवियों को आदेश ही दिया है. उनको सबसे अधिक सफलता मिली गुप्तजी को चुन लेने में, तथा उनको प्रोत्साहित करने में. " [2]

सन 1910 ई0 में गुप्तजी का सर्वप्रथम ऐतिहासिक खण्डकाव्य " रंग में भंग " प्रकाशित हुआ, जो खड़ी बोली में लिखा गया है. इसके बाद " जयद्रथ-वध " प्रकाशित हुआ. इस रचना के बाद ब्रजभाषा के पक्षपातीओंने कहा कि-उनके " जयद्रथ-वध " ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दिया और " भारत-भारती " में तो जैसे सुनिश्चित भारतीय भाषा का सतेज रुप ही खड़ा हो गया." [3]

1. मैथिलीशरण गुप्त- एक अध्ययन - रामरतन भटनागर- पृ. 27.
2. गुप्तजी की कला- सत्येन्द्र- पृ. 4.
3. वही- पृ. 7.

डा० सुधीन्द्र लिखते हैं कि- " उनकी [गुप्तजी की] लेखनी से " जयद्रथ-वध " और " भारत-भारती " की सृष्टि हुई तो वर्षों तक इन दोनों काव्यों की ही भाषा का सौष्ठव अनुकरणीय हो गया. उसमें खड़ी बोली की जो गरिमा, जो सुषमा प्रस्तुत हुई वह एक मानदण्ड बन गई. " [1] इन दो काव्यों के प्रकाशन से यह सिद्ध हुआ कि खड़ीबोली में भी काव्य रचना हो सकती है. इन दो काव्यों के प्रकाशन से खड़ीबोली की काव्योपयुक्तता सिद्ध हुई.

प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी तथा अन्य कवियों ने भी खड़ी बोली में काव्य रचनाएँ लिखकर उसके विकास में अपूर्व योगदान दिया है. " " इन कलाकारों की अपनी शक्तियों से इन्कार नहीं किया जा सकता, फिरभी यदि मैथिलीशरण गुप्त का योग न होता तो खड़ी बोली का इतना संस्कार एवं वैभव विकास शायद अभी तक न हुआ होता. इस प्रकार खड़ी बोली के विकास में उनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है. " [2] उनके बारे में शांति प्रिय द्विवेदी न ने लिखा है- " किसी माला में प्रथम मणि, उपवन में प्रथम पुष्प, गगन में प्रथम नक्षत्र का जो महत्वपूर्ण स्थान हो सकता है वही वर्तमान हिन्दी कविता में गुप्तजी का है. सन 1921 ई० में द्विवेदीजी ने " सरस्वती " से अवकाश ग्रहण किया. तबतक गुप्तजी हिन्दी साहित्य को पन्द्रह ग्रंथों की अमूल्य भेंट दे चुके थे.

सन 1915 ई० में गांधीजी अफ्रीका से लौटकर भारत आये. उनका आगमन होते ही भारत में गांधीयुग का आरंभ हुआ. गांधीजी की विचारधारा से प्रभावित होकर गुप्तजी ने " साकेत " और " पंचवटी " की रचना की. सन 1932 में " साकेत ", सन 1933 में " यशोधरा ", 1934 में " मंगलघट ", 1935 में " द्वापर ", " सिद्धराज " का प्रकाशन हुआ. इसके बाद " नहुष ",

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर- डा० सुधीन्द्र- पृ. 404.
2. मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता - उमाकान्त- पृ. 317.

" अंजलि और अर्घ्य ", " काबा और कर्बला ", " विश्व-वेदना ", " विष्णुप्रिया " आदि रचनाएँ लिखी गई. इसके अतिरिक्त गुप्तजी ने बंगला भाषा से " विरहिणी व्रजांगना " " पलासी का युद्ध ", " वीरांगना ", " मेघनाद वध " आदि काव्यों का अनुवाद किया.

डा० रामकुमार वर्मा को गुप्तजी के काव्य से प्रेरणा मिली है. वर्माजी की " हमीर हठ " गुप्तजी की " मीर हमीर " से प्रभावित हुई है. वे लिखते हैं- चूँकि मैंने उस काव्य में गीतिका- छंद का प्रयोग किया था, जो मैंने " जयद्रथ- वध " में पढ़ा था. इस प्रकार यदि कहा जाय कि मेरे काव्य जीवन में आदि प्रेरणा देने वाले श्री मैथिलीशरण गुप्त ही थे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी . "[1] श्री जैनेन्द्रकुमार " साधना के कवि " नामक अपने लेख में लिखते है " शायद तीसरी क्लास में था, तब मैथिलीशरण गुप्त का नाम मैंने सुना. सोचता हूँ कि तब मैं क्या जानने योग्य रहा हूँगा. अक्षर पढ़ना कम जानता हूँगा, पर जिस शाला में मैं था, उसके छोटे- बड़े, जाने- अनजाने सब बालकों के सिर उन दिनों मैथिलीशरण और उनके पद्य ऐसे चढ़ गये थे कि हरेक यह दिखाना चाहता था कि उसको अधिक पद्य याद हैं. मेरे कंठ भी तब कई पद्य बैठ गए थे. मतलब तो उनका पूरा हम क्या समझते होंगे , फिरभी धरोहर की भाँति सेंतकर उन पद्यों को हम अपनी स्मृति में रखे रहना चाहते थे. और ढिठाई देखिए, अनुकरण में वैसी कुछ पद्य रचना भी खुद किया करते थे. "[2] श्रीमती महादेवी वर्मा ने अपने निबंध " रेखाएँ " में लिखा है कि उन्होंने प्रारंभिक तुकबन्दी गुप्तजी के छंद के आधार पर ही शुरु की थी.

उपरोक्त साहित्यिक परिस्थितियों के मध्य ही गुप्तजी ने हिन्दी काव्य जगत में प्रवेश किया था. और अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के द्वारा अनेक अमूल्य कृतियों से माँ भारती के भण्डार की श्रीवृद्धि की. अनेक कवियों और लेखकों को उनसे सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई है . संक्षेप में द्विवेदीयुग में गुप्तजी का साहित्य ही अधिक मूल्यवान और पठनीय है.

---

1. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ- " हिन्दी काव्य के विकास के मार्ग निर्देशक- श्री रामकुमार वर्मा- पृ. 30.

2. ये और वे- जैनेन्द्रकुमार- पृ. 72.